सम्राट बहादुर शाह

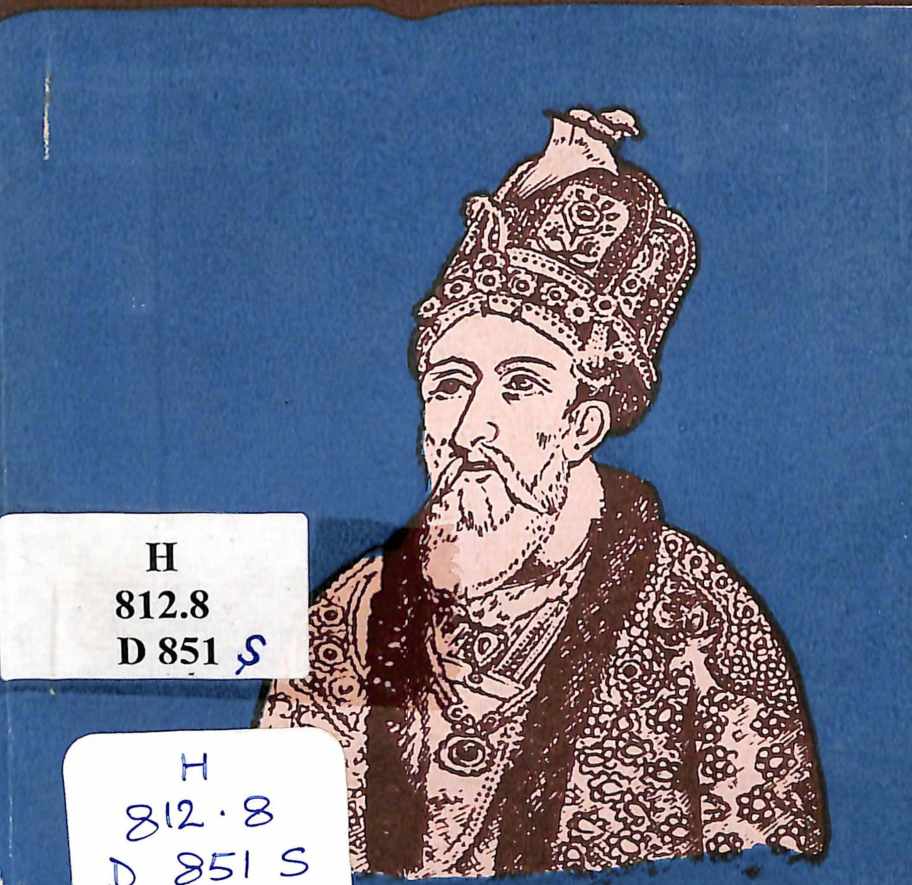

H
812.8
D 851 S

H
812·8
D 851 S

सम्राट बहादुरशाह

(ऐतिहासिक नाटक)

CATALOGUED

रामेश्वर दयाल दुबे

प्रकाशक

शीला देवी दुबे

निराला नगर, लखनऊ

प्रथम संस्करण-१९८४

मूल्य—८-००

© रामेश्वर दयाल दुबे

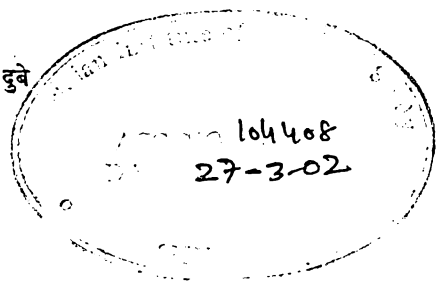

वितरक :—

साहित्य संगम,

नया १००, लूकरगंज, इलाहाबाद २११००१

Library IIAS, Shimla

H 812.8 D 851

00104408

मुद्रक : वर्तमान प्रिंटर्स, बाघम्बरी हाऊसिंग स्कीम

अल्लापुर, इलाहाबाद ।

प्रकाशक की ओर से

जिसे अँग्रेजों ने 'विद्रोह' कहा था, वह भारत को स्वतन्त्र करने के लिये १८५७ में होने वाला पहला युद्ध था। राजे-महराजे नवाब-तालूकेदार, रानियाँ-बेगमें, सारी जनता अँग्रेजों के खिलाफ उठ खड़ी हुई थी। इस स्वातन्त्र्य आंदोलन के नेता बने थे दिल्ली के सम्राट बहादुरशाह।

देशभक्त बहादुरशाह को अपनी देश भक्ति के लिये कितनी भारी कीमत कष्टों के रूप में उठानी पड़ी थी वह इतिहास का एक अत्यन्त करुण प्रसंग है।

हिन्दी के जाने माने साहित्यकार श्री रामेश्वर दयाल दुबे ने इन्ही घटनाओं को अपनी सशक्त लेखनी से इस नाटक में चित्रित किया है। हिन्दू मुस्लिम एकता, देश-प्रेम और स्वाभिमान सें भरा यह छोटा नाटक निश्चय ही नवयुवकों के लिये प्रेरणा का स्रोत बनेगा।

पात्र परिचय

बहादुरशाह—दिल्ली का सम्राट

जीनत महल—बहादुरशाह की बेगम

फातिमा—सम्राट की पुत्री

नाना साहेब—बिठूर के पेशवा

अजीमुल्ला खाँ—सूबेदार

जवाँबख्त—सम्राट का पुत्र

लाखा सिंह—मेरठ की सेना का सेनापति

इलाहीबख्श—सम्राट का समधी

बख्त खाँ—रुहेला सरदार

हडसन—अंग्रेज सेनापति

जमानी बेगम—जवाँबख्त की बेगम

अब्बास—नौकर

नेलसन—पड़ोसी अंग्रेज़

साँई सवील—भारत से पहुँचा एक फकीर

प्रथम दृश्य

[**स्थान**—दिल्ली का लाल किला -दीवाने खास।

बहादुरशाह 'जफर'—उम्र ६५ वर्ष। कीमखाब का चौड़ी मुहरी का पायजामा, ढाके की मलमल का कुर्ता पहने हैं। आरामकुर्सी पर बैठे गुनगुनाते हुये कुछ लिख रहे हैं। कुछ जोर से पढ़ना शुरू करते हैं। उठकर घूमने लगते हैं। बीच-बीच में खाँसते हैं।]

बहादुरशाह—

जो खिज़ा हुई वह बहार हूँ
जो उतर गया वह खुमार हूँ
जो बिगड़ गया वह नसीब हूँ
जो उजड़ गया वह सिंगार हूँ।

मेरा हाल काबिले दीद है
जिसे आस है न उमीद है
मेरी घुट के हसरत रह गई
उन हसरतों का मजार हूँ।

जो खिज़ा हुई वह बहार हूँ
जो उतर गया वह खुमार हूँ।

[जीनतमहल का प्रवेश]

जीनत महल—यह क्या ? आप घूमने लगे ! आप तो अपनी तन्दुरुस्ती का तनिक भी ख्याल नहीं रखते। हकीम साहब ने आराम करने के लिये कहा था और आप शायरी लिख रहे हैं, घूम रहे हैं।

बहादुरशाह—मेरी भोली बेगम ! यह तुम्हें मैं कैसे समझाऊँ कि मुझे मेरी शायरी में ही सबसे ज्यादह आराम मिलता है।

और तन्दुरस्ती ? अब तन्दुरस्ती क्या खाक रहेगी। बाल सफेद हो गये, बुढ़ापे ने आ घेरा। अब तो कब्र में पैर लटकाये बैठा हूँ।

जीनत—चुप भी रहिये। ऐसी बात कह कर आप मेरे दिल को दुखाते हैं। अच्छा, अब आप लेट जाइये। लेट जाइये।

बहादुरशाह--अच्छा, अच्छा लेटता हूँ। मगर, तुम मेरी एक-दो शेर तो सुनो। देखो, देखो, अपने टूटे हुये दिल की कैसी सच्ची तस्वीर मैंने इन शेरों में खीची है। इतनी देर में चार शेर ही तो लिख पाया हूँ, मगर ये शेर नहीं, जिगर के टुकड़े हैं—

जगह किस-किस को दूँ दिल में
तेरे हाथों से ऐ कातिल !
कटारी को, छुरी को, बाँछ को
खंजर को पैकाँ को !

कितना ला जवाब शेर बना है, बेगम ! अगर आज उस्ताद जौक होते तो सुनकर कितने खुश होते, कितनी दाद देते।

जीनत—आप की शायरी सुन कर खुश तो मैं भी होती हूँ, मेरे मालिक ! मगर मेरी दाद, मेरी वाह-वाह तो कोरी वाह-वाह होगी !

बहादुरशाह—दाद से, वाह-वाह से किसी शायर को कितनी ताकत मिलती है, कितना हौसला बढ़ता है, तुम न समझ पाओगी बेगम !

जो खिजा हुई वह बहार हूँ
जो उतर गया वह खुमार हूँ।

अरे ! यह क्या ? तुम्हारी तो आँखें गीली हो गई ! लो, अब नही सुनाता। मगर बेगम ! क्या सचमुच तुम बेग़म हो ? तुम्हें कोई ग़म नही ? क्या तुम्हें कोई ग़म नहीं कि शहनशाह अकबर और औरङ्गजेब की सन्तान कैसी बेवसी की जिन्दगी बिता रही है ?

ज़ीनत—मेरे मालिक ! दासी को दुख किस बात का ? उसके दिल की दुनिया के शहनशाह तो आप हैं। मैं तो आप के कदमों की लौंडी हूँ। मेरी लाख-लाख परेशानियाँ को आप का दीदार एक क्षण में दूर कर देता है। मगर जहाँपनाह ! आप चुप हो जावें। बात करने में भी ताकत बरबाद होती है।

बहादुरशाह—[हँसकर] जहाँपनाह ! खूब बेग़म खूब ! यों यों, कहने को लोग किसी को 'जहाँपनाह' कह देते हैं, मगर सच बात तो यह है कि जहाँ को पनाह देने वाला, दुनिया को शण देने वाला सिर्फ एक खुदा ही है ! बेग़म ! तुम मुझे 'जहाँपनाह' कहती हो ? तुम मज़ाक तो नहीं कर रही हो बेग़म ? मैं, मैं, सिर्फ नाम भर का एक कमजोर बादशाह—एक मामूली आदमी, जिसने जिन्दगी भर सुख का मुख नहीं देखा, जो अपने वालिद की निगाह में उतरा-उतरा रहा, जिसे तख्त मिला इस बुढापे में ! जब मैं गद्दी पर बैठा, तो किसी ने जाना तक नहीं।

बेगम ! तुम मुझे 'जहाँपनाह' कहती हो, लेकिन जानती हो, इस किले की चहार दीवारी ही मेरे राज्य की सीमा रह गई है। जिस तख्त पर मै बैठा करता हूँ उस तख्त की कीमत और ताकत मै जानता हूँ। यह बच्चे के हाथ के खिलौने से तनिक भी ज्यादह नहीं, जो कभी छीना जा सकता है। यह लम्बा खानदान ये शाही आदतें और यह मुट्ठी भर ५००-०० रुपये माहवार यह जिन्दगी भी कोई ज़िन्दगी है ?

हाँ, अब तो मैं सिर्फ शेर और शायरी का बादशाह रह गया हूँ।

ज़ीनत—मैं कहती हूँ, आप चुप हो जाइये, लेट जाइये, लेट भी जाइये।

बहादुरशाह—अच्छा, अच्छा ! लेटता हूँ ।

तुम जिसमें रहो खुश
मेरी वही रजा है ।

[बहादुर शाह लेटते हैं]

जीनत—मगर मेरे मालिक ! आप गलती करते हैं जब आप सोचते है कि आप सिर्फ नाम के बादशाह हैं । नहीं, ऐसी बात नहीं है । आप ने अपने बरताव से, आपने अपनी उदारता से, आपने अपने व्यवहार से रिआया के दिलों पर वह राज्य कायम किया है, जिसका कोई उदाहरण नहीं ।

[फातिमा का प्रवेश । रोती हुई आती है ।
जीनत के गले में लिपट जाती है]

फातिमा—अम्माजान ! अम्माजान ! वहीद चाचा अपना काठ का घोड़ा मुझे चढ़ने को नहीं देते । अम्माजान ! चल, दिला दे, दिला दे !

जीनत—फातिमा बेटी ! अभी चलती हूँ । तू रो मत ! मैं अभी घोड़ा दिला दूँगी । तू चल, मैं अभी आती हूँ ।

बहादुरशाह—[फातिमा को गोद में लेते हुये—प्यार से]

फातिमा ! तू काठ के घोड़े के लिये रोती है ? काठ के घोड़े के लिये ?

फातिमा—अब्बाजान ! आप तो हाथी पर चढ़ते हैं । मेरे लिये भी एक छोटा हाथी मँगा दीजिये ।

जीनत—फातिमा ! तू चल । वहीद को बुला । मैं उससे कहे देती हूँ ।

[फातिमा जाती है]

बहादुरशाह—देखा बेगम ! जिसे तुम 'शहनशाह' कहती हो, 'जहाँपनाह' कहती हो, उसकी बेटी, उसकी प्यारी बेटी काठ के

घोड़े के लिये रो रही है। तुमने सुना बेगम ? वह छोटा हाथी माँग रही थी। दे सकती हो उसे हाथी ? नहीं न ? इसीलिये तो कहता हूँ कि—

मैं जमी की पीठ का बोझ हूँ।
जो खिजा हुई वह बहार हूँ।।

जीनत—बिलकुल नहीं मेरे मालिक ! अगर मर्द अपनी मायूसी को छोड़ दे, हिम्मत से काम ले तो कोई न कोई रास्ता निकल ही आता है। बाप दादों ने किस शान से यहाँ राज्य किया है, आज उसी शाही खानदान की यह बुरी हालत मुझ से देखी नहीं जाती। सारी शान-शौकत गायब हो गई। माफ करें, आप का खयाल उधर जाता ही नहीं। आप तो शेर-शायरी से अपना मन बहला लेते हैं—मगर……

बहादुरशाह—लेकिन क्या ? अरे ! तुम्हारी आँखों में आँसू ! देखो बेगम ! तुम जानती हो कि तुम्हारी आँखों का पानी मेरे दिल में आग लगा देता है। नहीं हरगिज नहीं !

[बेगम के आँसू पोंछता है]

बेगम ! इस तरह दिल को छोटा न करो। यह तो काल का चक्र है। कभी अच्छे दिन देखे थे, अब ये दिन देखने पड़े हैं।

जीनत—मेरे मालिक ! क्या कुछ भी नहीं किया जा सकता ? सुनती हूँ अँग्रेजों के खिलाफ इधर-उधर क्रांति की चिनगारियाँ सुलग रहीं हैं। एक आँधी आने वाली है।

बहादुरशाह—हाँ बेगम ! सुनता तो मैं भी हूँ। अँग्रेजों के अत्याचारों से लोग तंग हो चुके हैं। तुमने जिन चिनगारियों का जिक्र किया, वे बिखरी हुई हैं, इसलिये उनसे क्या होगा ? अंग्रेजों को इस देश से हटाना कोई साधारण काम नहीं है।

जीनत—मैं कहाँ कहती हूँ कि वह साधारण काम है। मगर क्या ये चिनगारियाँ इकट्ठी नहीं की जा सकती ? ऐसे मौके बार-बार नहीं आते। कुछ तो सोचिये। तैमूर के वंशज को अपनी इज्जत बचानी ही चाहिये।

बहादुरशाह—ठीक कहती हो बेगम ! देखता हूँ, अल्लाह को क्या मंजूर है ?

[एक बाँदी का प्रवेश]

बाँदी—जहाँपनाह ! विठूर के जनाब नाना साहिब तशरीफ लाये हैं। हुजूर की सेवा में हाजिर होना चाहते हैं।

बहादुरशाह—विठूर के नाना साहेब ? वह यहाँ आये हैं ! आदर के साथ उन्हें यहाँ ले आ। उनके साथ और कौन कौन हैं ?

बाँदी—नाना साहेब के भाई बाला साहेब हैं और अज़ीमुल्ला खाँ साहब भी।

बहादुरशाह—बहुत अच्छा, बहुत अच्छा ! अजीमुल्ला खाँ भी ! सबको यहाँ दीवाने खास में ही ले आ।

[बाँदी का प्रस्थान]

[जीनत से] बेगम ! तुम जाओ। देखो फातिमा को समझा दो। वहीद से कहकर उसे घोड़ा दिला दो। शहनशाह की बेटी लकड़ी के घोड़े के लिये रोती है ! दिला दो, वह लकड़ी के घोड़े से अपना मन बहलाये ! वाह रे खुदा ! वाह री तेरी कुदरत ! जीनत ! तुम जाओ, और हाँ, जरा जवाँवख्त को भेज देना।

[जीनत जाती है। नाना साहेब आदि का प्रवेश। झुक झुक कर सलाम करतें हैं]

बहादुरशाह—आइये आइये, तशरीफ रखिये नाना साहेब ! बैठिये अजीमुल्ला खाँ साहेब ! कहिये कैसे इनायत की ?

नाना साहेब—इनायत नहीं, जहाँपनाह ! यह तो हम लोगों का सौभाग्य है कि वर्षों की इच्छा आज पूरी हो रही है। आज

आप की सेवामें उपस्थित होने का मौका मिला है ! मगर यह सुन-कर चिन्ता हुई कि आप की तबियत ठीक नहीं हैं। फिर भी आपने उपस्थित होने के लिये अनुमति दी, इसके लिये आप का आभारी हूँ।

बहादुरशाह—इस बुढ़ापे में अब तबियत और क्या ठीक रहेगी ! शरीर कब तक साथ दे सकता है ? लेकिन जब मन पर निराशा छा जाती है तब अपने समय से पहले ही बुढ़ापा आ जाता है। आजकल मेरी हालत कुछ ऐसी ही है। निराशा, नाउम्मेदी·····

[जवाँबख्त का प्रवेश]

जवाँबख्त—अब्बाजान ! आपने मुझे याद किया ?

बहादुरशाह—हाँ बेटे ! देखो, विठूर से नाना साहेब, बाला साहेब और अजीमुल्ला खाँ साहेब तशरीफ लायें हैं। ये हमारे मेहमान होंगे। मेजवानी का भार तुम्हारे ऊपर है। इन्हें कोई तकलीफ न होने पावे।

जवाँबख्त—आप फिक्र न करें अब्बाजान ! मैं देखूँगा।

[जवाँबख्त का प्रस्थान]

अजीमुल्ला खाँ—निराशा, नाउम्मेदी ! आप क्या कह रहे हैं जहाँपनाह ! हम लोगा, आशा का, उम्मेदी का, साहस का पाठ तो आप से सीखने आये हैं। मन के पस्त होने पर तन भी पस्त हो जाता है।

नाना—ठीक कहते हो, अजीमुल्ला खाँ ! 'मन के हारे हार है मन के जीते जीत।'

बहादुरशाह—तुम गलत कहते हो—ऐसा मैं नहीं कहता। मगर फिर भी मेरी हालत बड़ी नाजुक है। मेरे शरीर में अब

ताकत नहीं, कि कुछ विशेष कर सकूँ। और इन फिरंगियों ने तो हमें कहीं का नहीं छोड़ा है। वे बड़े चालाक हैं।

नाना—फिर भी शहनशाह! इन फिरंगियों को यहाँ से भगाना है। इनकी मक्कारी, इनकी धोखेबाजी, इनकी बदमाशी अब सहन नहीं की जा सकती। किसी को तो आज तक इन्होंने नहीं छोड़ा है। डलहौजी की कूटनीति की कहानियाँ आपने सुनी ही होंगी।

बहादुरशाह—हाँ, सुन चुका हूँ। अवध के नवाब, अवध की बेगमें और अवध की प्रजा के साथ जो भयंकर जुल्म हुये हैं, उन्हें सुनकर गुस्से के मारे इन बूढ़ी नसों में भी खून खौल उठता है। डलहौजी की कूटनीति ने न जाने कितनों को कौड़ी-कौड़ी का भिखारी बना दिया है। सुना है झाँसी पर भी उसकी निगाह है। झाँसी की रानी, बेचारी एक विधवा!

नाना—जहाँपनाह! बिल्कुल नहीं। झाँसी की रानी विधवा भले हो पर वह बेचारी नहीं। आज वह अत्याचार के खिलाफ रणचंडी बनकर खड़ी हुई है। वह प्रतीक्षा कर रही है आप के इशारे की।

अजीमुल्ला खाँ—शहनशाह! आप गौर तो कीजिये। इन नाना साहेब के साथ भी कितना अत्याचार हुआ है। इनके सारे अधिकार छीन लिये गये हैं। इन सब अत्याचारों का बदला लेना है। हुजूर! यह तभी हो सकता है, जब आप हमारे रहनुमा बने, नेता बने। आप की ताकत तो हम होंगे, हमारी फौजें होगी, जिनका एक-एक सिपाही इन फिरंगियों के प्राणों का प्यासा बना बैठा है। रही खजाने की बात, उसकी आप चिन्ता न करें। इन फिरंगियों के सारे खजाने आपके होंगे।

नाना—जहाँपनाह! मैंने अभी बाहर सुना कि हर ईद के अवसर पर, हुजूर की वर्ष गाँठ के अवसर पर गवर्नर जनरल

और कमान्डर-इन चीफ नंगे पाँव दरबारे आम में उपस्थित होकर नज़रें पेश किया करते हैं, वे भी अब बन्द की जाने वाली हैं। यह अपमान कैसे सहा जा सकता है ? दिल्ली का बादशाह हम सब के लिये अब भी शहनशाह है। उसका अपमान हमारा अपमान है, हम सबका अपमान है। हम इसे सहन नहीं कर सकते। इन फिरंगियों के पाप का घड़ा भर चुका है एक ठोकर से वह फूट जायगा। आप हमारे नेता बन जाइये आप को कुछ करना न होगा। करेंगे तो हम लोग।

बहादुरशाह—तुम लोग जरूरत से ज्यादा मुझ से उम्मीद कर रहे हो। मेरे शरीर में अब उतनी ताकत नहीं कि तलवार उठा सकूँ [कुछ रुक कर] मगर मेरे इस कहने का मतलब यह न समझना कि मैं कायर हूँ। बुढ़ापा मुझे तलवार उठाने से भले मना करे, मगर मेरा जोश आज भी कम नहीं। आजादी की इस लड़ाई में कूद पड़ने के लिये मेरा दिल भी उतावला हो रहा है, मगर···

नाना—मगर क्या ? जहाँपनाह !

बहादुरशाह—मगर यह कि मुझे इस मुल्क के इन छोटे-मोटे राजाओं पर, जमीदारों पर, जागीरदारों पर भरोसा नहीं होता कि ये कब तक साथ देंगे। वचन देकर भी साथ देंगे या नहीं—फिरंगियों की, चालाक फिरङ्गियों की चालों में आयेंगे तो नहीं। यही सब सोच रहा हूँ।

अज़ीमुल्ला खाँ—शहनशाह ! मेरा तो खयाल है कि किसी पर विश्वास न करने के बजाय सब पर विश्वास करके चलना ज्यादा अच्छा होता है, भले उसका फल कुछ भी हो। फिर वह सवाल तो हर आदमी का अपना है। हमें अपने कर्तव्य पूरे करने हैं, हम यह क्यों देखें कि कौन हमारे पीछे आता है, कौन नहीं आता है। मुल्क को आजाद कराना हमारा फर्ज है उस फर्ज को

हम पूरा करें यह इन्सानियत की माँग है। इसी इन्सानियत का पाठ सीखने के लिये हम यहाँ आये हैं।

बहादुरशाह—[हाथ उठाकर] तो फिर जैसी खुदा की मर्जी ! मैं तहे दिल से आप सब के साथ हूँ। खुदा हम सब को इस पाक काम में सफल बनावे।

[नाना साहब से]

नाना साहब ! सच कहूँ तो आज बरसों की कामना पूरी हो रही है। दिल जैसे उछल रहा है। मन चाहता है कि तेज घोड़े पर चढ़ कर दौड़ूँ।

नाना—जहाँपनाह ! मेरी अभिलाषा पूरी हुई। अब वह दिन दूर नहीं जब इन अत्याचारी फिरंगियों को इस देश से निकाल कर हम सब आप को सच्चे अर्थ में शहनशाह के रूप में देखेंगे और आपका अभिनन्दन करेंगे।

अजीमुल्ला खाँ—शहनशाह ! हम सबने जंगे आजादी को शुरू करने के लिये ३१ मई की तारीख तय की है। एक साथ सारे मुल्क में आग भड़केगी—एक साथ

नाना—अच्छा, तो जहाँपनाह ! आज्ञा दें। कल प्रातः यहाँ से अम्बाला जाना है। फिर आगे कई जगह पर पहुँचना है।

बहादुरशाह—तो आप इससे पहले कहाँ-कहाँ हो आये ?

नाना—कहीं नहीं जहाँपनाह ! बिठूर से सीधा दिल्ली आया। आप की मंजूरी मिल गई बस अब हमारी तीर्थ यात्रा शुरू होगी।

बहादुरशाह—[चकित होकर] तीर्थ यात्रा ?

नाना—हाँ, जहाँपनाह ! मेरे लिये यह तीर्थयात्रा से कम नहीं। जननी जन्म भूमि की स्वतंत्रता प्राप्त करने को मैं भगवान की सबसे बड़ी पूजा—इबादत मानता हूँ।

बहादुरशाह—तो अब कहाँ-कहाँ जाना है ?

अजीमुल्ला खाँ—कल अम्बाला जा रहे हैं, फिर कई रियासतों में होते हुये लखनऊ। लखनऊ के बाद बाँदा, कालपी।

नाना—जहाँपनाह ! एक प्रार्थना है।

बहादुरशाह—वह क्या ?

नाना—मैं चाहता हूँ कि आप हिन्दुस्तान की हिन्दू-मुस्लिम जनता के नाम एक फरमान निकालें। गुप्त रूप से उसके बँटवाने का प्रबन्ध हम करेंगे और जिस किसी राजा रईस, जागीरदार, नवाब से जाकर हम मिलेंगे, उसको आपका यह फरमान दिखायेंगे।

अजीमुल्ला खाँ—बहुत ठीक नाना साहेब ! आपने यह ठीक सोचा।

शहनशाह ! जरूर लिखा दीजिये।

बहादुरशाह—आप लोग चाहते हैं तो मुझे क्या एतराज हो सकता है। अच्छा तो लिखो. अजीमुल्ला खाँ, मैं आपको ही लिखाये देता हूँ।

अजीमुल्ला खाँ—जो हुक्म !

[बहादुरशाह बोलते जाते हैं—अजीमुल्ला खाँ लिखते जाते हैं।]

बहादुरशाह—अच्छा, अब पढ़कर सुनाओ तो।

[अजीमुल्ला खाँ सुनाता है]

"ऐ हिन्दुस्तान के हिन्दुओं और मुसलमानो ! उठो, भाइयो उठो। खुदा ने जितनी दौलते इन्सान को दी है उनमें सबसे कीमती दौलत आजादी है, स्वतंत्रता है। खुदा अब यह नहीं चाहता कि तुम सब चुप बैठे रहो, क्योंकि उसने हिन्दू और मुसलमानों के दिलों में अँग्रेजों को अपने देश से बाहर निकालने की इच्छा पैदा कर दी है। भगवान की कृपा और तुम लोगों की बहादुरी से

जल्दी ही अँग्रेजों को इतनी बड़ी शिकस्त मिलेगी कि हमारे इस मुल्क हिन्दुस्तान में उनका नाम निशान भी न रह जायगा। इसलिये मैं फिर अपने तमाम हिन्दी भाइयों से कहता हूँ कि उठो और आजादी का इतिहास खून से लिखने के लिये मैदाने जंग में कूद पड़ो। इसके अलावा एक बात की जरूरत है कि इस युद्ध में तमाम हिन्दू और मुसलमान मिलकर काम करें और अपने नेता की हिदायतों पर चल कर इस तरह काम करें, जिससे देश में शान्ति कायम रहे गरीब लोग सुखी बनें और उनका अपना मान सम्मान बढ़े।

नाना—बहुत अच्छा, बहुत ठीक! जहाँपनाह! आप का यह एलान जादू का काम करेगा।

बहादुरशाह—अच्छा लाओ! दस्तखत कर दूँ।

[रुक कर]

लेकिन अभी नहीं। एक बात और लिखनी चाहिये। आगे लिखिये।

"मैंने ऊपर नेता की बात कही है। हमें एक ऐसा नेता चाहिये जो सारे युद्ध का संचालन कर सके और देश भर की सारी ताकतों को एक माला में पिरो सके।

"मैं यहाँ यह बात साफ कर दूँ कि अँग्रेजों के निकल जाने पर मेरे मन में भारत पर शासन करने की कोई इच्छा नहीं है। अगर आप लोग फिरंगियों के खिलाफ तलवारें उठाने के लिये तैयार है तो मैं अपने सारे अधिकार उस नेता को सौपने के लिए तैयार हूँ जिसको आप सब लोग नेता के रूप में चुने।"

नाना—जहाँपनाह! आपने यह सब क्या लिखाया। नेता चुनने का प्रश्न ही नही है। आप हमारे चुने चुनाये नेता हैं।

अजीमुल्ला खाँ—बिलकुल ठीक। आप के रहते दूसरा नेता चुनने का सवाल ही नहीं उठता।

बहादुरशाह—ठीक है, ठीक है। मगर मुझे अपनी ओर से इतना जोड़ देना ही चाहिये। मेरे सामने सवाल देश की आजादी का है खुद का नहीं। अच्छा लाओ हस्ताक्षर कर दें।

[हस्ताक्षर करता है]

अच्छा ! अब आप लोग जाकर आराम करें। काफ़ी दूरी से आये हैं। जवाँबख्त आप का इन्तजार कर रहा होगा मैं इस फरमान की नकले तैयार करवाता हूँ। आप साथ लेते जा सकते हैं।

नाना—तो अब अनुमति मिले।

अजीमुल्ला खाँ—मैं बहुत शुक्रगुजार हूँ शहनशाह !

बहादुरशाह—शुक्रगुजार ! घर में कोई किसी को सुक्रिया अदा करता है ? धन्यवाद देता है ?

नाना—आदावर्ज।

बहादुरशाह—खुदा हाफिज !

[दोनों जाते हैं]

[परदा गिरता है।]

□

द्वितीय दृश्य

[स्थान—अन्तःपुर। बेगम जीनत महल खत लिखने में व्यस्त है। फातिमा प्रवेश करती है। दौड़ती हुई आकर अपनी अम्माजान के गले में लिपट जाती है।]

फातिमा—क्यों अम्माजान ! तुम भी लड़ाई पर जाओगी। मैं भी साथ चलूँगी।

जीनत—कैसी लड़ाई ? किससे लड़ाई ?

फातिमा—लड़ाई कैसी होती है—यह तो मैं नहीं जानती, मगर किससे लड़ाई होगी—यह मुझे मालूम है।

जीनत—किससे होगी ? बता।

फातिमा—क्यों बताऊँ ? तू मुझे कुछ बताती है ? अब्बाजान से कैसे चुपके-चुपके बातें करती है। लेकिन मैं जान गई। जान गई। अच्छा बताऊँ ? अब्बाजान लड़ेंगे फिरँगियों से। खूब लड़ाई होगी। बड़ा मज़ा आयेगा। तू भी जायगी न लड़ने ? मैं भी चलूँगी।

जीनत—चुप बेटी ! ऐसी बातें नही की जातीं। जो किया जाता है वह कहा नहीं जाता। अच्छा, जा। तू उधर बगीचे में खेल आ। तब तक मैं ये थोड़े खत लिख लूँ।

फातिमा—अच्छा तो मैं साथ चलूँगीं।

जीनत—अच्छा, अच्छा, जा।

[फातिमा जाती है जीनत खत लिखने में लग जाती है]

[बहादुरशाह का प्रवेश]

बहादुरशाह—बेगम ! तुम तो किसी बात के पीछे पड़कर रह जाती हो। काम तो होते ही रहेंगे, थोड़ा आराम तो लिया करो।

जीनत—जब काम सामने पड़ा हो तो फ़िर आराम कैसा ? अब तक आपके एलान की नकलें तैयार करती रही। मुल्तान, फरीदकोट और झींद के लिये खत लिखने हैं। आज तारीख ११ हो गई। दिन ही कितने बाकी बचे हैं ? कुल १६ दिन। नेतागीरी का जो कठिन काम आपने अपने सिर पर लिया है उसे अगर शान से निभाना है तो काम तो करने ही होंगे, मेहनत तो करनी ही होगी।

बहादुरशाह—तुम्हारी ताकत मुझे मालूम थी, तभी तो मैंने यह भारी बोझ अपने कन्धों पर लिया है। मगर बेगम ! अगर सच बात कहूँ, तो मुझे तो यह सब फिजूल मालूम होता है। कभी कभी सोचने लगता हूँ कि यह दुनिया भी क्या एक तमाशा है। और यह तमाशा चल रहा है रात-दिन। सब अपनी-अपनी भूमिका निभा रहे हैं। कोई किसी ओर ध्यान नहीं देता। अपनी धुन में सब मस्त। और इस तमाशे को देखने वाला एक है, सिर्फ एक है और वह भी पर्दे के उस पार। बेगम ! मुझे उसका जब ख्याला आत है तो ये पंक्तियाँ अपने आप जवान पर आ जाती हैं—

बहुत मस्जिद में सिर मारा
बहुत-सा ढूढ़ा बुतखाना।
मुझे तो होश दे इतना
रहूँ मैं तुझ पै दीवाना॥

जीनत—मेरे मालिक ! मैं तो हैरान हूँ आप के दिल की ये अलग-अलग शक्लें देखकर। जब आप शायरों की महफिल में बैठते हैं तब लगता है जैसे आप इश्क के. प्रेम के परवाना बन गये हैं और जब फिरंगियों की बात उठती है तो आपकी आँखों के डोरे लाल हो जाते हैं और जब आप दिल की गहराई में उतरते हैं तब सूफी फकीर की तरह बातें करने लगते हैं।

बहादुरशाह—ठीक कहती हो बेगम ! न तो मैं ऊँचे दर्जे का शायर बन सका, न सूफी फकीर। और अब बादशाह, शहनशाह तो तुम [हँसता है] इस बुढ़ौती में मुझे बनाने जा रही हो, फरमान पर फरमान मुझसे निकलवाकर।

जीनत—मेरे मालिक ! जब मुल्क में अमन-चैन होती है तब राजा और प्रजा का, बादशाह और रिआया का भेद हुआ करता है। राजा प्रजा को प्यार करता है और प्रजा राजा का आदर करती है। मगर जब देश पर संकट आ जाता है तब राजा-प्रजा का बादशाह-रिआया का भेद मिट जाता है और सब के सब देश के सेवक बन जाते हैं, बन जाने चाहिये। आज जब देश पर संकट आया है, विदेशी फिरंगी मुल्क को दासता की जंजीरों से जकड़ना चाहते हैं तब न कोई राजा है न कोई प्रजा, न बादशाह न रिआया। उसी तरह न कोई हिन्दू है न कोई मुसलमान। सब देश के सेवक है, सिपाही हैं। सारी फौज विद्रोह कर बैठी है। दिल्ली के लिये फौज रवाना हो चुकी है। रास्ते में जनता का पूरा सहयोग मिल रहा है। दूत खबर लाया है कि फौज का घुड़सवार दस्ता दिल्ली के निकट आ पहुँचा है।

बहादुरशाह—[चकित होकर] मेरठ में आग वख्त से पहले भड़क उठी। फौजें दिल्ली आ रही हैं। मगर यह हुआ कैसे ? बात तो ३० मई की थी। आज तो ११ तारीख है। यह कैसे हो सकता है।

जीनत—यह तो बुरा हुआ। पकने से पहले जब फल तोड़ लिया जाता है तब वह खट्टा होता है। वक्त से पहले यह शुरुआत किसने कर दी ? या अल्ला ! अभी तो पूरी तैयारी भी न हो पाई थी अब क्या होगा ? अब क्या होगा ?

बहादुरशाह—होगा क्या ? होगा तो वही जो मंजूरे खुदा होगा।

जीनत—मेरे मालिक ! मेरा तो जी घबराता है। अल्ला खैर करे। सब कुछ तो छिन गया। या खुदा ! अब और बुरे दिन न दिखाये।

बहादुरशाह—बेगम ! अगर इस तरह धीरज खोओगी, तो काम कैसे चलेगा ? जो तकलीफ, जो आफत अभी आई नहीं, उससे इस तरह घबराने से क्या मतलब ? क्या पता, क्या होने वाला है। क्यों न हम अपनी जिन्दगी की नाव उसी की मर्जी पर छोड़ दें, जो रहीम भी है, करीम भी है। घबराने की बात नहीं है।

जवाँवख्त—अब्बाजान ! घबराने की बात नहीं, मगर कुछ करने की तो बात है ही। हाथ पर हाथ रखकर बैठने से तो काम न चलेगा। आखिर ये फौज़े दिल्ली क्यों आ रही है ? क्या पता वे यहाँ आकर क्या करें। विद्रोही सिपाही अपना होश खो देते हैं।

बहादुरशाह—जहाँ तक मैं सोच सकता हूँ—ये फौजें दिल्ली पर कब्जा करने आ रही हैं। फिरंगियों के हाथ से दिल्ली का निकल जाना बहुत माने रखता है। मैं नहीं मानता कि वे किले की तरफ आयेंगे।

जीनत—और अगर आये तो ?

बहादुरशाह—अगर आयेंगे तो दोस्त की तरह आयेंगे, दुश्मन की तरह नहीं।

जीनत—या खुदा ऐसा ही हो !

बहादुरशाह—ऐसा ही होगा, बेगम तुम घबराओ नहीं। [जवांवख्त से] और बेटा जवांवख्त ! तुम हरम में जाकर औरतों को तसल्ली देना। वे घबराये नहीं।

[जवांवख्त जाता है]

जीनत—आदमी हमेशा उतावला हो जाता है। ऐसी क्या

जल्दी पड़ी थी। तीस तारीख को तो आने देते।

[बाँदी का प्रवेश]

बाँदी—[घबराई हुई] जहाँपनाह! फ़ौजें दिल्ली शहर में घुस आई हैं। कासिद खबर लाया है। खिदमत में हाजिर होना चाहता है।

बहादुरशाह—कासिद को यहीं ले आओ।

बाँदी—जो हुक्म!

[जाती है]

बहादुरशाह—बेगम! तुमने ठीक याद दिलाई। मैं एक फरमान और निकालना चाहता हूँ। मैं नहीं चाहता कि उस परम्परा को एक क्षण भी चालू रखा जाय जिसके कारण हिन्दू प्रजा के दिल को ठेस लगती हो।

जीनत—आपका मतलब?

बहादुरशाह—मेरा इशारा गो-बध बन्द करने की ओर है। कल रात को मैंने हकीम साहब से बात की थी। वे कह रहे थे कि इस बारे में मौलवियों की राय ले लेनी चाहिये। मैंने उनके सुझाव को मंजूर नहीं किया।

जीनत—आपने ठीक किया मेरे मालिक! गोवध का नाजुक मामला दो धर्मों के अनुयायियों के बीच मतभेद का कारण क्यों बने? और फिर इस वक्त, जब हिन्दू और मुसलमानों को एक जुट होकर फिरंगियों से लड़ना है। इस समय तो मतभेद का कोई कारण रहना ही नहीं चाहिये।

बहादुरशाह—तो बेगम! मैं बोलता जाता हूँ, तुम्हीं लिख लो नहीं तो मेरे ख्याल से बात उतर जायेगी। बुढ़ापे में याददाश्त भी कमजोर हो जाती है।

जीनत—जब देखो तब आप बुढापे का राग गाने लगते हैं। यह ठीक नहीं।

बहादुरशाह—[हँसकर] तो तुम मुझे जवान देखना चाहती हो। लेकिन तुम भी तो जवान हो जाओ, मेरी प्यारी बेगम!

जीनत—अच्छा, अच्छा! रहने दो ये प्यार की बातें। हाँ, आप क्या लिखाना चाहते थे।

बहादुरशाह—लिखो—"जो कोई इस बकरीद के मौसम में या उसके आगे-पीछे गाय या बैल, बछड़ा या बछड़ी, भैंस या भैंसा लुका छिपा कर अपने घर में कुर्बानी करेगा वह हुजूर जहाँपनाह का दुश्मन माना जायगा और उसको मौत की सजा होगी। दोषी पाये जाने वाले को बेशक तोप से बाँध कर उड़वा दिया जावेगा।"

क्यों बेगम! ठीक है न?

जीनत—बिलकुल ठीक! हिन्दू मुस्लिम एकता का यह मुख्य पाया है। हमारे पूर्वज शहनशाह अकबर ने, शाहजहाँ, ने इसके लिये बहुत कुछ किया था। हम क्यों न करें।

[जवांबख्त का प्रवेश]

जवांबख्त—[घबराई हुई आवाज में] अब्बाजान! आपने सुना? जंग छिड़ गई!

बहादुरशाह—जंग छिड़ गई?

जीनत—जंग छिड़ गई?

बहादुरशाह—तुम कहते क्या हो जवांबख्त? जंग छिड़ गई? यह कैसे हो सकता है। आज तो तारीख ११ है। अभी तो १६ दिन बाकी है।

जवांबख्त—हाँ अब्बाजान! जंग छिड़ गई। खबर मिली है कि मेरठ में आग भड़क उठी। वहाँ काफी फिरंगियों का सफाया हो गया।

जीनत—सिपहसालार को खबर करा दीजिये । जल्दी कीजिये ।

बहादुरशाह—ठहरो, धीरज धरो । कासिद को आने दो ।

[कासिद का प्रवेश]

कासिद—जहाँपनाह ! मेरठ से चली हुई हिन्दुस्तानी फौजें फिरंगियों का सफाया करती हुई दिल्ली शहर में दाखिल हो चुकी है । दिल्ली वालों ने शरबत पिला-पिला कर सेना के जवानों का स्वागत किया है। कश्मीरी दरवाजे की तरफ जितने भी अंग्रेजी परिवार थे, उनका सफाया कर दिया गया है । किसी को भी छोड़ा नहीं है । अब फौजें किले की तरफ आ रही हैं ।

बहादुरशाह—किसी को छोड़ा नहीं ? क्या मतलब ? क्या फिरंगियों की औरतों और बच्चों को भी कतल कर दिया ?

कासिद—जी हाँ जहाँपनाह !

बहादुरशाह—[दुखी होकर] तुम कहते क्या हो ? औरतों और बच्चों पर भी हाथ उठाया गया ? उन्हें कत्ल कर दिया । ऐसा करते उन्हें शर्म नहीं आई ?

[जीनत से] बेगम ! ['अल्लाओ अकबर' 'हर हर महादेव' की आवाजें सुनाई देती हैं ।] देखो आवाजें नज़दीक आ रही है ।

हमें हर मौके के लिये तैयार रहना चाहिये । जाओ, सम्हालो, कोई घबराये नहीं । [जीनत जाती है]

[कासिद से]

और तुम जाओ ! हिन्दुस्तानी फौजों और उनके कामों का पूरा हाल हमें जल्दी जल्दी मिलना चाहिये ।

कासिद—जो हुक्म ! [जाता है ।]

[फातिमा दौड़ती हुई आती है]

फातिमा—अब्बाजान, अब्बाजान ! किले के फाटक के सामने

मेला लग रहा है। बेंड बज रहा है। बड़ी भीड़ है। चलो चलो, देखें। बहीद चाचा और मैं अभी खिड़की से देख कर आई हूँ। जल्दी चलो। बड़ा-सा मेला !

बहादुरशाह—अच्छा ! अच्छा ! जरा ठहरो। तुम अपनी अम्माजान के पास जाओ। [फातिमा जाती है]

[कासिद का प्रवेश]

कासिद—जहाँपनाह ! हिन्दुस्तानी फौजें आकर किले के बाहर खड़ी हैं। उनके सिपह सालार लाखा सिंह का एक सिपाही आप के लिये खत लेकर आया है। खुद अपने हाथ से देना चाहता है।

बहादुरशाह—जाओ, उस सिपाही को मेरे सामने पेश करो।

[कासिद जाता है]

[अपने आप से] क्या तमाशा है। सिपह सालार मिरजा मुगल का अब तक पता नहीं। सिपह सालार बनने की तो बड़ी इच्छा थी। इस समय शराब में गर्क कहीं पड़ा होगा।

[सिपाही का प्रवेश]

सिपाही—जहाँपनाह ! हिन्दुस्तानी फौजों के सिपह सालार लाखा सिंह किले के बाहर अपनी फौज के साथ खड़े हैं। आपके लिये उनका यह खत हाजिर है।

[खत देता है। बहादुरशाह पढ़ता है]

बहादुरशाह—

"मेरठ से चलकर हम सब आप की शरण में आये है। मेरठ के फिरंगियों का पूरा खजाना साथ है। तोपखाना पीछे आ रहा है। हम और हमारी फौज आदर और सम्मान के साथ आप को सलामी देने के लिये इन्तजार कर रहे हैं। आशा है आप हमारी अभिलाषा पूरी करेंगे।

105508

बहादुरशाह—जाओ सिपहसालार लाखा सिंह को यहां बुला लाओ। हम उनसे यहीं बात करेंगे।

[सिपाही जाता है]

[बहादुरशाह उठ कर टहलने लगते हैं। अपने आप से]

भला यह भी कोई इन्सानियत है—

जिसे ऐश में यादे खुदा न रही।
जिसे तैश में खाफ़े खुदा न रहा।

[बार बार दुहराते हैं]

[बाँदी का प्रवेश]

बाँदी—जहाँपनाह ! हिन्दुस्तानी फौजों के सिपहसालार लाखासिंह हाजिर है।

बहादुरशाह—उन्हें अन्दर ले आओ।

बाँदी—जो हुक्म ! [जाती है]

[सिपह सालार का प्रवेश। हाथ में हरा झंडा है। झुक झुक कर सलाम करता है।]

बहादुरशाह—लाखासिंह ! तुम्हारे हाथ में सल्तनते दिल्ली का झंडा कैसे ?

लाखासिंह—जहाँपनाह ! अब यह झंडा सिर्फ लाल किले क झंडा नहीं है, हम सब का झंडा है। यह उन सबका झंडा है जे फिरंगियों से लड़कर उन्हें इस देश से भगा देना चाहते हैं। आपके इसी झंडे के नीचे हिन्दू, मुसलमान, राजे-नवाब, सेठ-साहूकार जमींदार और आम जनता खड़ी होकर फिरंगियों से लड़ेगी आप जैसा नेता हमें मिल रहा है—इसका हमें गर्व है। खजाने व उन वक्तों की ये चाबियाँ आपके कदमों में रखता हूँ, जो फाटक के बाहर बैलगाड़ियों पर लदे खड़े हैं। इन्हें स्वीकार करें। आगे आप की आज्ञा चाहिये।

बहादुरशाह—लेकिन पहले मुझे यह तो बताओ कि जंगे आजादी शुरू करने के लिये तारीख ३० मई तय हुई थी। तारीख १० को ही वह क्यों शुरू कर दी गई ?

लाखासिंह—जोश जब जरूरत से ज्यादह बढ़ जाता है तब होश खो बैठता है। यही हुआ। एक बहादुर जवान ने जल्दी कर दी। जब आग भड़क गई तो वापस तो लौटा नहीं जा सकता था। अब तो इसे निभाना है। इसमें हमें आपके मार्गदर्शन की सख्त जरूरत है।

बहादुरशाह—लेकिन मेरा मार्ग दर्शन तुम्हें मँहगा पड़ेगा। मैं बुड्ढा हो रहा हूँ। मेरे पास सिर्फ यह लाल किला है। कोई बड़ी सेना भी हमारे पास नहीं रह गई है।

लाखा सह—जहाँपनाह ! आप व्यर्थ में अपना दिल छोटा कर रहे हैं। आप की ताकत किले के बाहर खड़े बीस हजार बहादुर सैनिक हैं। और न जाने कितनी फौजें आप का हुक्म मानने में अपना गौरव समझेंगी। और खजाना ? कुछ खजाना तो हम साथ लाये ही हैं। खजाने की कमी आप को न होगी। आप तो हमारे नेता बनिये, बस यही प्रार्थना है।

बहादुरशाह—नेता बनना तो हमने उसी दिन मंजूर कर लिया था जिस दिन बिठूर के नाना साहेब और अजीमुल्ला खाँ यहाँ आये थे। मगर आज अभी हमने क्या सुना ? मेरा तो सिर शर्म से झुक गया।

लाखासिंह—क्या सुना, जहाँपनाह !

बहादुरशाह—अभी-अभी सुना कि तुम्हारी फौज के सिपाहियों ने फिरंगियों की औरतों-बच्चों का भी कत्ल किया। फिरंगी और खास कर वे फिरंगी, जो यहाँ हुकूमत कर रहे हैं, तुम्हारे और हमारे दुश्मन हो सकते हैं, मगर फिरंगियों की औरतों और बल-

बहादुरशाह—जाओ सिपहसालार लाखा सिंह को यहां बुला लाओ। हम उनसे यहीं बात करेंगे।

[सिपाही जाता है]

[बहादुरशाह उठ कर टहलने लगते हैं। अपने आप से]

भला यह भी कोई इन्सानियत है—

जिसे ऐश में यादे खुदा न रही।
जिसे तैश में खाफ़े खुदा न रहा।

[बार बार दुहराते हैं]

[बाँदी का प्रवेश]

बाँदी—जहाँपनाह ! हिन्दुस्तानी फौजों के सिपहसालार लाखासिंह हाजिर है।

बहादुरशाह—उन्हें अन्दर ले आओ।

बाँदी—जो हुक्म ! [जाती है]

[सिपह सालार का प्रवेश। हाथ में हरा झंडा है। झुक झुक कर सलाम करता है।]

बहादुरशाह—लाखासिंह ! तुम्हारे हाथ में सल्तनते दिल्ली का झंडा कैसे ?

लाखासिंह—जहाँपनाह ! अब यह झंडा सिर्फ लाल किले का झंडा नहीं है, हम सब का झंडा है। यह उन सबका झंडा है जो फिरंगियों से लड़कर उन्हें इस देश से भगा देना चाहते हैं। आपके इसी झंडे के नीचे हिन्दू, मुसलमान, राजे-नवाब, सेठ-साहूकार जमींदार और आम जनता खड़ी होकर फिरंगियों से लड़ेगी। आप जैसा नेता हमें मिल रहा है–इसका हमें गर्व है। खजाने के उन बक्सों की ये चाबियाँ आपके कदमों में रखता हूँ, जो फाटक के बाहर बैलगाड़ियों पर लदे खड़े हैं। इन्हें स्वीकार करें। आगे आप की आज्ञा चाहिये।

बहादुरशाह—लेकिन पहले मुझे यह तो बताओ कि जंगे आजादी शुरू करने के लिये तारीख ३० मई तय हुई थी। तारीख १० को ही वह क्यों शुरू कर दी गई ?

लाखासिंह—जोश जब जरूरत से ज्यादह बढ़ जाता है तब होश खो बैठता है। यही हुआ। एक बहादुर जवान ने जल्दी कर दी। जब आग भड़क गई तो वापस तो लौटा नहीं जा सकता था। अब तो इसे निभाना है। इसमें हमें आपके मार्गदर्शन की सख्त जरूरत है।

बहादुरशाह—लेकिन मेरा मार्ग दर्शन तुम्हें मँहगा पड़ेगा। मैं बुड्ढा हो रहा हूँ। मेरे पास सिर्फ यह लाल किला है। कोई बड़ी सेना भी हमारे पास नहीं रह गई है।

लाखा सह—जहाँपनाह ! आप व्यर्थ में अपना दिल छोटा कर रहे हैं। आप की ताकत किले के बाहर खड़े बीस हजार बहादुर सैनिक हैं। और न जाने कितनी फौजें आप का हुक्म मानने में अपना गौरव समझेंगी। और खजाना ? कुछ खजाना तो हम साथ लाये ही हैं। खजाने की कमी आप को न होगी। आप तो हमारे नेता बनिये, बस यही प्रार्थना है।

बहादुरशाह—नेता बनना तो हमने उसी दिन मंजूर कर लिया था जिस दिन बिठूर के नाना साहेब और अजीमुल्ला खाँ यहाँ आये थे। मगर आज अभी हमने क्या सुना ? मेरा तो सिर शर्म से झुक गया।

लाखासिंह—क्या सुना, जहाँपनाह !

बहादुरशाह—अभी-अभी सुना कि तुम्हारी फौज के सिपाहियों ने फिरंगियों की औरतों-बच्चों का भी कत्ल किया। फिरंगी और खास कर वे फिरंगी, जो यहाँ हुकूमत कर रहे हैं, तुम्हारे और हमारे दुश्मन हो सकते हैं, मगर फिरंगियों की औरतों और बल-

बच्चों से क्या लेना-देना ? औरतों और बच्चों पर हाथ उठाना कहाँ की इन्सानियत है ? हमारे इस पाक हिन्दुस्तान की इन्सानियत तो हरगिज़ नहीं। हम यह कभी सहन नहीं कर सकते। बोलो, कश्मीर दरवाजे पर ऐसा कुछ हुआ ?

लाखासिंह—हुआ जहाँपनाह ! मैं शरमिन्दा हूँ।

बहादुरशाह—तो अब आगे यह कभी नही होगा, हरगिज नहीं होगा। हमारा मार्गदर्शन अगर चाहते हो तो अभी फौजों को आगाह कर दो कि भूल कर भी फिरंगी औरतों और बच्चों पर हाथ न उठाया जाय। उसी तरह किसी रिआया को न छेड़ा जाय। समझे ?

लाखासिंह—जी समझा ! अभी एलान करा दिया जायगा। तो ये चाबियाँ स्वीकार करें और बाहर आकर सेना की सलामी स्वीकार कर हमारा उत्साह बढ़ावें।

[चाबियाँ सौपता है]

[बहादुरशाह चाबियों को लेते हैं। लाखा सिंह बार-बार कहता है—'बहादुरशाह की जय, बहादुरशाह की जय। बाहर—'बहादुरशाह की जय", 'फिरंगियों की छै, की आवाजें होती हैं।]

[परदा गिरता है]

□

तृतीय दृश्य

[स्थान—दरबारे खास]

बहादुरशाह—बेटी फातिमा !

फातिमा—अब्बाजान आ गये ? आप कहाँ गये थे ? हाथी पर चढ़कर लड़ाई लड़ने ?

बहादुरशाह—नहीं बेटी, शहर गया था ।

फातिमा—क्या सारे दिन शहर घूमते रहे ? क्या आपने अभी तक शहर नहीं देखा था ? मैं तो सारा शहर देख चुकी हूँ ।

बहादुरशाह—नहीं बेटी ! मैं दूसरे काम से गया था ।

फातिमा—किस काम से अब्बाजान ?

बहादुरशाह—तुम नहीं समझोगी, फातिमा ? तुम्हारी अम्माजान कहाँ है ?

[जीनत का प्रवेश]

जीनत—आप आ गये ? ओह, आज तो आप तमाम दिन शहर में घूमते रहे—न खाने की फिक्र, न पीने की ।·····अरी फातिमा ? जा, बाँदी से कह—शरबत ले आये ।

[फातिमा जाती है]

बहादुरशाह—हाँ, आज सुबह से निकला हूँ—अब लौट पाया । क्या करूँ बेगम ! इन लोगों को कैसे समझाऊँ ? मुझे तो डर है कि हिन्दुस्तानियों की फूट ही फिरंगियों की जीत का कारण बनेगी । तुमने सुना ?

जीनत—क्या ?

बहादुरशाह—अरे वह पंजाब का चीफ कमिश्नर, सरजान लारेन्स सिखों को क्या कह कर भड़काता है ?

जीनत—क्या कहता है ?

बहादुरशाह—कहता है—ये मुसलमान और उनका बादशाह तुम्हारे सिख-धर्म को नष्ट भ्रष्ट करना चाहते हैं। क्या तुम भूल गये कि गुरू तेगबहादुर का सर कत्ल करने वाले यही मुसलमान थे। आज तुम्हें मौका मिला है। हम लोग तुम्हारी मदद करेंगे। इस दिल्ली की ईंट से ईंट बजा दो। हर मुसलमान से बदला लो। मौका बार-बार नहीं आता। (रुक कर) अब तुम्हीं कहो इन सिखों को भोला कहूँ या बेवकूफ। ये सिख···।

जीनत—क्या सिख, फिरंगियों के बहकाये में आने वाले हैं ?

बहादुरशाह—मुल्क की बदकिस्मती है, बेगम ! भाई-भाई को लड़ाकर ये फरेबी अँग्रेज अपना उल्लू सीधा कर रहे हैं। दिल्ली शहर में भी ये लोग जहर फैलाने में कामयाब हुये हैं। इसीलिये तो लोगों को घूम-घूम कर समझाता रहा।

[बाँदी शरबत लाती है।]

जीनत—लीजिये, थोड़ा शरबत पी लीजिये। फिर भोजन करें। आप थोड़ा लेट जायें—बहुत थक गये मालूम होते हैं।

बहादुरशाह—(शरबत पीते हुए) ओह ! तुम्हारे पास आ जाने पर ही मेरी रूह को तसल्ली मिलती है। बेगम ! देखता हूँ, इन्सान सिर्फ अपने मतलब के लिए हैवान बनने के लिए तैयार हो जाता है।

अरे हाँ, यह तो मैं तुम्हें बताना भूल ही गया कि इन कम्बख्त फिरंगियों ने मेरे नाम का एक जाली एलान भी बँटवाया है।

जीनत—जाली एलान ! क्या लिखा है उसमें ?

बहादुरशाह—उसमें लिखा है—"ए मुसलमानों ! एक भी सिख बचने न पाये। हिन्दुस्तान में इस्लाम धर्म के अगर कोई दुश्मन हैं, तो ये सिख। इसलिये हर सिख को मार डाला जाय।"

जीनत—आपके दस्तखत कैसे बना लिये !

बहादुरशाह—जब कोई झूठ पर उतारु हो जाता है, तो क्या नहीं कर सकता ?

जीनत—इन झूठे, मक्कार और धोखेबाज फिरंगियों को दोज़ख मिलेगी, दोज़ख। इन्सानियत तो इनमें छूकर नहीं निकली है।

अभी बाँदी सुना रही थी कि फिरंगी जुल्म की हद कर रहे हैं। हिन्दुस्तानियों को पकड़-पकड़ कर आग में भूँज रहे हैं। शरीर को संगीनों से बींध रहे हैं। हिन्दुओं के मुँह में गाय का और मुसलमान के मुँह में सूअर का गोस्त रखवाते हैं। औरतों की इज्जत लूटते हैं, बच्चों को मौत के घाट उतारते हैं।

[जवांबख्त का प्रवेश]

(घबराया हुआ)

जवांबख्त—अब्बाजान ? मिरजा मुगल और मिरजा सुलतान में झगड़ा हो गया। दोनों ने शमशीरें तक खींच लीं हैं।

बहादुरशाह अब कहो बेगम ? सिख और मुसलमान तो मातृभूमि के नाते से भाई-भाई हैं। मगर यह मिरजा मुगल और मिरजा सुलतान तो एक माँ-बाप के बेटे हैं···भाई-भाई हैं। दोनों का खून एक है, फिर भी लड़ पड़ते हैं—इन्हें कौन समझाये, कि जब दुश्मन देहलो पर खड़ा है, तब तो कम से कम मिलकर रहें।

जीनत—या अल्लाह ! यह क्या होनेवाला है ! मैं जाती हूँ। ज़रा देखूँ—ये लोग क्यों लड़ते हैं ?

बहादुरशाह—जाओ बेगम, जाओ। हर एक माँ यही तो करती रहती है। वह यह कैसे देख सकती है कि उसकी सन्तान एक दूसरे पर वार करें।

[जीनत जाती है]

(मिरजा इलाहीबख्श का प्रवेश)

इलाही—मैं हाजिर हो सकता हूँ ?

बहादुरशाह—आओ, आओ, इलाहीबख्श। आज तो बहुत दिनों बाद आये। क्या कहीं बाहर गये थे ?

इलाही—अजी गोली मारो बाहर जाने को ! मैं तो जौक की इस शेर का कायल हूँ—

हालाँ है मुल्के दखन में आज दिन कहेरे सुखन।
कौन जाये जौक पर दिल्ली की गलियाँ छोड़कर ।।

आप तो शायर हैं—शेर लिखते ही रहते हैं। मगर गुस्ताखी माफ हो, मैंने भी एक शेर लिखा है—

जब तक जीना, तब तक पीना
जब तक पीना, तब तक जीना।
पीने को जो पाप कहे वह
मर्द नहीं है, बड़ा कमीना ।।

बहादुरशाह—मगर याद रखना इलाहीबख्श !

गिलासी में जो डूबे
वह न उबरे जिन्नगानी में।

इलाही—उबरने पर लानत। यहाँ तो नशे में चूर रहना चाहता हूँ। और अब तो विलायती शराब के मज़े !

बहादुरशाह—विलायती शराब के मज़े ! शराब बुरी है, फिर चाहे वह देशी हो या विलायती। इलाही, मैं तो आजादी के मज़े लूट रहा हूँ। मगर मेरी सबसे बड़ी परेशानी यह, कि मुझे कोई योग्य प्रधान सिपहसालार नहीं मिल रहा है। मिरजा-मुगल इस योग्य न था, कि फौजों पर रोब जमा सकता। दूसरे, शाहजादे भी निकम्मे हैं। ज़वांबख्श अभी बच्चा है। सोचता था हिन्दुस्तानी फौजों के किसी सरदार को सिपहसालार बना लूँ, पर देखता हूँ. वे सब एक दूसरे से ईर्षा करते हैं। फिलहाल मैंने एक रुहेले को ?

इलाही—हाँ-हाँ मैंने सुना कि आपने उस रुहेला छोकरे को—शायद "मुहम्मद वख्त खाँ नाम है—सिपह सालार बनाया है। उस पर आप खूब फिदा हुये।

बहादुरशाह—बहादुरी पर, दिलेरी पर, वीरता पर फिदा होना कोई पाप तो नहीं है। इलाही वख्श ! तुम उसे छोकरा कहते हो ? जो १४ हजार पैदल, ३ घुड़ सवार पल्टन का मालिक है जिसका हर एक सिपाही शेर के समान है, मगर किसकी ताकत कि कोई स्वप्न में भी हुक्म उदीली करे। तुम अगरशराब से छुट्टी पाते, तो देख पाते, कि पिछली २३ जून को, जिस दिन प्लासी की सदी का दिन हिन्दुस्तानी फौजों ने मनाया था बहादुर वख्तखाँ ने कैसी बहादुरी दिखाई थी।

इलाही—जी हाँ, सुना तो मैंने भी है। उस दिन कमांडर-इन-चीफ रीड़ मुझसे कह रहा था, कि वख्तखाँ बड़ा बहादुर है।

बहादुरशाह—क्या ? कमांडर-इन-चीफ तुमसे कह रहा था ? क्या मतलब ? क्या तुम्हारा कमांडर-इन-चीफ रीड़ के साथ कोई ताल्लुक ? कोई सम्बन्ध ?

इलाही—जी, जी नहीं बात यह है, मेरे कहने का मतलब यह है, याने, यों समझ लीजिये कि कभी-कभी मुलाकात हो जाती है। मेरे उससे क्या सम्बन्ध हो सकते हैं। रिश्ता, और खून का रिश्ता, तो आप से जुड़ा है। मैं आपका समधी जो ठहरा।

बहादुरशाह—मेरे आप समधी हैं यह भी क्या कोई बताने की बात है। मगर एक बात जरूर कहूँगा। अभी तुम विदेशी शराब के गुन गा रहे थे। शराब इन्सान को हैवान बना देती है। फिर कौन-सा पाप हैं, जो आदमी नहीं कर सकता।

इलाही—(हँसता है) आप कहते क्या हैं शहनशाह ? मैं स्वीकार करता हूँ कि मैं शराब पीता हूँ। लेकिन पापों से मेरा क्या सम्बन्ध ?

बहादुरशाह—अच्छा ! अच्छा ! यह कहो कि इस जंगे आजादी में तुम क्या हिस्सा ले रहे हो। मैं चाहता हूँ कि मेरे खानदान का बच्चा-बच्चा, खानदान ही क्यों, मेरा हर एक रिश्तेदार भी, मातृ-भूमि की आजादी के लिए, अपनी जान तक देने के लिए तैयार हो जाये। इतिहास में ऐसे मौके कभी-कभी ही आते हैं।

इलाही—शहनशाह ! मैं और की तो बात नहीं कहता, मगर-जहाँ तक इस बन्दे का सवाल है, आप विश्वास रखें। मैं भरसक कोशिश करूँगा, कि मैं आपका मददगार बनूं। मगर, अगर गुस्ताकी माफ हो, तो एक बात कहूँ।

बहादुरशाह—कहो, कहो, इलाहीबख्श !

इलाही—बात यह है शहनशाह ! कि लोगों को आम शिकायत है, हॉलाकि वे आप के सामने जबान नहीं खोलते—कि आप अपनेपर उतना यकीन नहीं करते, जितना परायों पर। यह तो मानना ही होगा, कि अपने, अपने ही होते हैं और पराये-पराये। वक्त

पड़ने पर, जो अपने होते हैं, वही मददगार होते हैं। पराये तो अपना मतलब पूरा किया और चलते बने।

बहादुरशाह—तुम्हारी बात ठीक हो सकती है इलाही बख्श! मगर 'अपने' और 'पराये'—इन दो हिस्सों में दुनिया को बाँट कर इंसान ने ठीक नहीं किया। जो हो, मुझे तो तुम पर क्या हर मुसलमान पर पूरा भरोसा है।

बख्त खाँ—मैं हाजिर हों सकता हूँ?

बहादुरशाह—आओ बख्त खाँ!

इलाही—अच्छा, तो शहनशाह मैं चला।

बख्त खाँ—क्यों, क्यों इलाहीबख्श? मेरा आना आपके जाने का कारण तो नहीं बनना चाहिये।

इलाही—वल्लाह! क्या बात करते हैं! अजी, मैं तो वैसे ही शहनशाह से छुट्टी ले रहा था। मुझे जरा! जल्दी है, वरना आप से बातें करने में मजा आता! अच्छा, जहांपनाह! आदाबर्ज।

[**इलाही बख्श का जाना**]

बख्त खाँ—जहाँपनाह! मैं आज की लड़ाई का पूरा हाल सुनाने आया था।

बहादुरशाह—सुनाओ बेटा! सुनाओ! तुम्हारे मुंह से खुश खबरें सुनकर ही तो, इस बूढ़े बादशाह का हौसला बढ़ता है।

बख्त खाँ—जहाँपनाह! हमारी फौजोंने फिरंगी सेना के छक्के छुड़ा दिये हैं। कल दोपहर को तो, शहर परकोटे के ठीक नीचे अँगरेजों की सेना आ गई थी। मगर परकोटे के ऊपर की हमारी तोपों ने जिस कदर बल बरसाये, कि कम्पनी के सिपाही चनों की तरह भुन गये। हमें अपनी फौजों की ताकत पर पूरा भरोसा

है और विश्वास है, कि हम फतहयाब होंगे। लेकिन.....।

[फातिमा के साथ जीनत का प्रवेश]

जीनत—बेटी ! अब्बाजान को सलाम करो और वख्तखाँ को भी ।

वख्तखाँ—क्यों ? क्यों ? बेगम साहब ! आज तो हमारी शाहजादी खूब सजी-वजी है । क्या कोई खास बात है.?

जीनत—आज उसकी सालगिरह है वख्त खाँ !

बहादुरशाह—(चौंककर) फातिमा की सालगिरह है आज ? औरतुमने मुझे बताया तक नहीं ।

जीनत—जहाँ लड़ाई छिड़ी हो, गोलियाँ चल रही हों, यह लाल किला भी तोपों का निशाना बन रहा हो, वहाँ सालगिरह का उत्सव कैसा ? पहले तो मैंने सोचा था कि फातिमा के साल-गिरह की याद तक न दिलाऊँ । मगर क्या करूँ ? माँ का दिल जो लिये बैठी हूँ । मन नहीं ही माना तब सोचा—चलो, और कुछ सही बच्ची को थोड़ा सजा-वजा दूँ । सबको सलाम कर ले । और क्या है ।

एक वख्त था, जब बच्ची की सालगिरह किस शान-शौकत से मनाते थे । और एक आज का वख्त है कि.....

[उदास हो जाती है ।]

बहादुरशाह—हरगिज नहीं, बेगम ! दिल छोटा करने की कोई जरूरत नहीं । बच्चों की सालगिरह मनाने के, और शान से मनाने के दिन फिर आयेंगे । आओ बेटी फातिमा ! तुम तो आज बड़ी अच्छी लग रही हो । तुम ने मुझे सलाम किया वख्त खाँ को सलाम किया; लेकिन यह तो बता, तू ने अम्माजान को सलाम किया कि नहीं ?

फातिमा—(शरमाती हुई) नहीं किया।

बहादुरशाह—नहीं किया ? अरे ! यह तो ठीक नहीं हुआ, फातिमा ! अम्माजान को तो, सालगिरह के दिन सबसे पहले सलाम करना चाहिये। करो, अम्माजान को सलाम करो।

[सलाम करती है]

ज़ीनत—(चिपटाकर) जीती रहो मेरी बच्ची।

(बहादुशाह से) अच्छा, मैं चलती हूँ।

बहादुरशाह—नहीं, तुम यहीं बैठो (फातिमा से) और हाँ, बेटी फातिमा ! तुम जाओ। देखो, महल में जाकर सब को सलाम करना।

फातिमा—अच्छा अब्बाजान !

[फातिमा जाती है।]

बहादुरशाह—हाँ, वख्त खाँ ! तुम क्या कह रहे थे कि "हम फतहयाब होंगे, लेकिन.....

वख्त खाँ—हाँ, जहाँपनाह ! मैं यही कह रहा था कि "हम फतहयाब हो सकते हैं, लेकिन एक बड़ी कठिनाई पैदा हो गई है,...

बहादुरशाह—वह क्या ?

वख्तखाँ—यही कि जगह-जगह से जितनी सेनाएँ दिल्ली शहर में आ गई हैं, उनकी तादाद और उनकी ताकत, इतनी है कि अगर वे चाहें तो इन फिरंगियों को फेंक कर उड़ा सकती है। सामान की भी कोई कमी नहीं है। मगर.....

ज़ीनत—तुम कहना क्या चाहते हो, वख्तखाँ ! तुम कहते हो—"अगर सेना चाहे तो···" क्या मतलब ? क्या हमारी फौजों के सिपाही यह नहीं चाहते हैं कि फिरंगियों को यहाँ से भगाया जाय ?

वख्तखाँ—वे चाहते हैं, बेगम साहबा !

जीनत—फिर क्या बात है ?

वख्तखाँ—बात यह है बेगम साहबा ! कि सिर्फ चाहने से ही तो कोई काम पूरा नहीं होता। उसके लिए काम करना पड़ता है, पिसना पड़ता है, कुर्बानी करनी पड़ती है। आज जो फौजे दिल्ली में मौजूद हैं, उनके सरदार जगह-जगह के राजा, नवाब या ऊँचे खानदान के लोग हैं। वे एक दूसरे की बात मानने के लिए तैयार नहीं। आपस की खींचातानी बढ़ रही है।

बहादुरशाह—वे एक दूसरे की बात मानें, न मानें. मगर तुम्हारी बात, अपने सिपहसालार की बात तो मानते हैं ?

वख्तखाँ—काश, ऐसा होता। बात यह है, कि मेरा सम्बन्ध किसी शाही खानदान से तो है नहीं। मैं तो एक मामूली रुहेला सरदार हूँ। मैं अपनी कीमत जानता हूँ। मैं नाचीज हूँ। मगर जब आपने मुझे यह पद दिया है, तब मैं चाहता हूँ कि अपना खून-पसीना एक करके, विजय प्राप्त करूँ। मगर देखता हूँ कि लोग इसके लिए तैयार नहीं। दुर्भाग्य से उन्हें अपनी-अपनी पड़ी है। हर शख्श चाहता है कि उसका हुक्म चले। ऐसी हालत में, मैं क्या कर सकता हूँ ? एक दूसरी भी कठिनाई है—

जीनत—वह क्या ?

वख्तखाँ—दिल्ली शहर में, हमारी फौजों में और इस किले में भी फिरंगियों के जासूसों का जाल बिछ चुका है।

बहादुरशाह—(उत्तेजित होकर) तुम कह क्या रहे हो वख्त खाँ ? जासूस ? भेदिये ? फिरंगियों के जासूस शहर में ? फौज में ? इस किले में भी ?

वख्तखाँ—मैं ठीक कह रहा हूँ, जहाँपनाह ! हर दिन मुझे इसका अनुभव हो रहा है। मेरी कोशिशें ठीक मौके पर फेल हो

जाती हैं—ऐसा क्यों होता है ? शहर की, फौज की गुप्त खबरें जरूर फिरंगियों के पास पहुँच जाती हैं।

जीनत—ओह ! या अल्ला ! अगर ऐसा है, तो फिर क्या हो सकता है ?

बहादुरशाह—क्यों नहीं हो सकता है ? इस तरह से हिम्मत हारने से क्या होगा ? हर कठिनाई का सामना कर उससे जूझकर और जो सामने आये, उसे स्वीकार कर, आगे बढ़ते रहने का नाम ही तो जिन्दगी है। वख्तखाँ ! तुम हरगिज नाउम्मीद मत हो। बेगम ! तुम जरा लिखो तो। मैं इन राजाओं, नवाबों, सरदारों और सिपहसालारों के दिल तक पहुँचना चाहता हूँ। कम-से-कम एक कोशिश तो और कर लूँ। लिखो—

[जीनत लिखने बैठती है]

लाओ मैं खुद लिखता हूँ।

[लिखने के बाद पढ़ता है]

"ऐ हिन्दुस्तान के फरजन्दो ! मेरी यह दिली ख्वाहिश है कि जिस जरिये से भी और जिस कीमत पर भी हो सके; फिरंगियों को हिन्दुस्तान से बाहर निकाल दिया जाय, लेकिन इस जंगे आजादी में हम तब तक विजयी नहीं हो सकते, जब तक कौम की भिन्न-भिन्न ताकतें एक होकर, लड़ाई नहीं लड़ती। मुझे आप लोगों ने इस जंगे-आजादी का नेता बनाया है, तो मैं जो कहता हूँ, उसे करो। फूट बुरी चीज है। उसे छोड़ कर एक हो जाओ।

मैं यह साफ कर देना चाहता हूँ कि अपने निजी लाभ के लिए हिन्दुस्तान पर राज्य करने की मुझ में जरा भी ख्वाहिश नहीं है। आप लोग जिसे चाहें, अपना प्रतिनिधि बनावें मगर पहला कर्तव्य यह है कि अपनी मातृभूमि को आजाद करें।" ठीक है न बेगम ?

जीनत—फिर क्या बात है ?

वख्तखाँ—बात यह है बेगम साहबा ! कि सिर्फ चाहने से ही तो कोई काम पूरा नहीं होता। उसके लिए काम करना पड़ता है, पिसना पड़ता है, कुर्बानी करनी पड़ती है। आज जो फौजें दिल्ली में मौजूद हैं, उनके सरदार जगह-जगह के राजा, नवाब या ऊँचे खानदान के लोग हैं। वे एक दूसरे की बात मानने के लिए तैयार नहीं। आपस की खींचातानी बढ़ रही है।

बहादुरशाह—वे एक दूसरे की बात मानें, न मानें. मगर तुम्हारी बात, अपने सिपहसालार की बात तो मानते हैं ?

वख्तखाँ—काश, ऐसा होता। बात यह है, कि मेरा सम्बन्ध किसी शाही खानदान से तो है नहीं। मैं तो एक मामूली रुहेला सरदार हूँ। मैं अपनी कीमत जानता हूँ। मैं नाचीज हूँ। मगर जब आपने मुझे यह पद दिया है, तब मैं चाहता हूँ कि अपना खून-पसीना एक करके, विजय प्राप्त करूँ। मगर देखता हूँ कि लोग इसके लिए तैयार नहीं। दुर्भाग्य से उन्हें अपनी-अपनी पड़ी है। हर शख्श चाहता है कि उसका हुक्म चले। ऐसी हालत में, मैं क्या कर सकता हूँ ? एक दूसरी भी कठिनाई है—

जीनत—वह क्या ?

वख्तखाँ—दिल्ली शहर में, हमारी फौजों में और इस किले में भी फिरंगियों के जासूसों का जाल बिछ चुका है।

बहादुरशाह—(उत्तेजित होकर) तुम कह क्या रहे हो वख्त खाँ ? जासूस ? भेदिये ? फिरंगियों के जासूस शहर में ? फौज में ? इस किले में भी ?

वख्तखाँ—मैं ठीक कह रहा हूँ, जहाँपनाह ! हर दिन मुझे इसका अनुभव हो रहा है। मेरी कोशिशें ठीक मौके पर फेल हो

जाती हैं—ऐसा क्यों होता है ? शहर की, फौज की गुप्त खबरें जरूर फिरंगियों के पास पहुँच जाती हैं।

जीनत—ओह ! या अल्ला ! अगर ऐसा है, तो फिर क्या हो सकता है ?

बहादुरशाह—क्यों नहीं हो सकता है ? इस तरह से हिम्मत हारने से क्या होगा ? हर कठिनाई का सामना कर उससे जूझकर और जो सामने आये, उसे स्वीकार कर, आगे बढ़ते रहने का नाम ही तो जिन्दगी है। वख्तखाँ ! तुम हरगिज नाउम्मीद मत हो। वेगम ! तुम जरा लिखो तो। मैं इन राजाओं, नवाबों, सरदारों और सिपहसालारों के दिल तक पहुँचना चाहता हूँ। कम-से-कम एक कोशिश तो और कर लूँ। लिखो—

[जीनत लिखने बैठती है]

लाओ मैं खुद लिखता हूँ।

[लिखने के बाद पढ़ता है]

"ऐ हिन्दुस्तान के फरजन्दो ! मेरी यह दिली ख्वाहिश है कि जिस जरिये से भी और जिस कीमत पर भी हो सके; फिरंगियों को हिन्दुस्तान से बाहर निकाल दिया जाय, लेकिन इस जंगे आजादी में हम तब तक विजयी नहीं हो सकते, जब तक कौम की भिन्न-भिन्न ताकतें एक होकर, लड़ाई नहीं लड़ती। मुझे आप सबने इस जंगे-आजादी का नेता बनाया है, तो मैं जो कहता हूँ, उसे करो। फूट बुरी चीज है। उसे छोड़ कर एक हो जाओ।

मैं यह साफ कर देना चाहता हूँ कि अपने निजी लाभ के लिए हिन्दुस्तान पर राज्य करने की मुझ में जरा भी ख्वाहिश नहीं है। आप लोग जिसे चाहें, अपना प्रतिनिधि बनावें मगर पहला कर्तव्य यह है कि अपनी मातृभूमि को आजाद करें।" ठीक है न बेगम ? क्यों वख्तखाँ ?

जीनत—बिलकुल ठीक ।

वख्तखाँ—इसमें आपने दिल उँड़ेल दिया है ।

बहादुरशाह—मैं अब तक निकाले गये फरमानों पर स्याही से दस्तखत करता रहा हूँ, मगर आज इस खास मौके पर, मैं अपने खून से इस ऐलान पर दस्तखत करूँगा ।

[अंगूली से खून निकाल कर दस्तखत करता है]

जीनत—(घबराकर) यह क्या ? यह क्या करते हैं आप ?

बहादुरशाह—कुछ नहीं बेगम ! इस लाल रंग को देखने की आदत, अपनी इन आँखों को डाल रहा हूँ । यह आदत तो सबके हो ही जानी चाहिये ।

अच्छा, वख्त खाँ ! लो, इस ऐलान को तुम ले जाओ और सभी राजाओं, सरदारों को दिखा दो । खुदा करे, तुम मेल पैदा करने में सफल हो ।

वख्तखाँ—जैसा हुक्म ।

[सलाम करता है]

बहादुरशाह—खुदा हाफिज ।

[परदा गिरता है]

□

चतुर्थ दृश्य

[स्थान—केम्प]

हड़सन—वेल इलाबोक्स।

इलाही—देखिये हुजूर! मैं कई बार आपसे गुजारिश कर चुका हूँ कि आप मुझे बैल मत कहा करें। मेरा नाम भी गलत बोलते है।

हड़सन—क्या कहटा है टुम! 'वेल' नहीं कहना माँगटा-क्यों? वैल' कहने में क्या बाट है?

इलाही—मै क्या बैल हूँ—मेरे क्या चार पैर हैं?

हड़सन—वेल? चार पैर? हम टूम्हारा कहना नहीं समझटा। टुम क्या कहटा है? वैल कहने से टुम क्यों चिढ़ता है?

इलाही—बैल, नहीं समझते? वह जो गाय—जैसा होता है।

हड़सन—मटलब? बैल मीन्स गाय?

इलाही—नहीं, नहीं, साहब! गाय नहीं। गाय का नर।

हड़सन—नहीं समझटा, गाय का नर।

इलाही—ओह! कैसे समझाऊँ? हाँ ठीक। देखिये, जैसे मेम साहब का साहब आप हैं, उसी तरह गाय का साहब बैल।

हड़सन—ओ ओ (हँसता है) अब समझा! गाय का हसबेंड गाय का हसबेंड। आल राइट, हम टुम को 'बैल' नहीं कहेगा इलाबोक्स?

इलाही—बोक्स नहीं **वख्श**।

हड़सन—बाक्स।

इलाही—वख्श।

हड़सन—वक्स ।

इलाही—माफ कीजिये, आप नहीं बोल सकेंगे ।

हड़सन—वेल, ओ माफ करना, अच्छा इल्लाबक्स । हमारा शराब टुमको कैसा पसन्द आया ।

इलाही—बहुत अच्छा है हुजूर ! मुझे बहुत पसन्द है ।

हड़सन—तुम्हारे लिए रोज एक बोटल का इन्तजाम है । टुम हमारा डास्ट है न ।

इलाही—यह भी कोई कहने की बात है ।

हड़सन—अच्छा यह बताओ, किले में तुम्हारे कितने जासूस है ?

इलाही—अभी ५-६ आदमियों को अपना वना पाया है। किले में अपने जासूस पैदा करना बड़ा मुश्किल काम है । खतरनाक भी है ।

हड़सन—देखो इलाबक्स । टुम हमेरा डोस्ट है । इस वजह हमने सोचा है कि वहादुरशाह को पकड़ कर जेल में डालेगा, और टुम को वादशाह वनावेगा ठब दिल्ली का वादशाह हमेरा डोस्ट होगा ।

अच्छा, अच्छा--टुमको अभी कितना रुपया चाहिए । रुपया जितना चाहो लो, मगर काम होना चाहिए ।

इलाही—सिर्फ दो हजार अभी चाहिए ।

हड़सन—अच्छा, यह लो—और यह रही टुम्हारी बोटल । लंडन से टुम्हारे वास्ते मँगवाया है ।

सारा काम कल तक होना चहिए । मुझे वराबर खबर देटे रहो । समझा ?

इलाही—समझा । हुजूर, मैं ज्यादातर वहादुरशाह के साथ रहूँगा । बीच-वीचं में आदमी के जरिए खबर भेजता रहूँगा ।

हड़सन—बहुट अच्छा, बहुट अच्छा। तुम्हारे लिए एक और बोटल बढ़िया शराब का (दिखा कर) यह रखा है। मगर अभी नहीं देना माँगटा, बरना टुम उसे भी पी लेगा और बेहोश होकर कहीं पड़ा रहेगा। देखो यह रही बोटल टुम्हारे लिए।

इलाही—अच्छा, मैं चलता हूँ।

[परदा गिरता है।]

□

पंचम दृश्य

[स्थान —हुमायूं मकबरा]

[चारपाई पर पाँव पर पाँव रखे बहादुरशाह बैठे हैं। सफेद चोगा पहने सफेद पगड़ी—पास की दूसरी खाट पर बेगम।]

बहादुरशाह—बेगम ! समझ में नहीं आता, कि लाल किला छोड़कर इस वक्त हम लोगों का इस हुमायूँ मकबरे में आना, कहाँ तक ठीक हुआ ?

जीनत—मेरी तो अक्ल ही काम नहीं कर रही है। किसे ख्याल था, कि यह नौबत आ जावेगी। तीन-चौथाई दिल्ली पर तो, अँग्रेजों का कब्जा हो ही गया। जुम्मा मस्जिद पर कल शाम जो घमासान लड़ाई हुई थी, उसे तो महल की खिड़की से मैंने खुद देखा था। ओह ! कैसा खौफनाक नज्जारा था ! क्या से क्या हो रहा है ? हम लोगों को जैसी सलाह दी गयी, वैसा हमने किया। अब यहाँ आना ठीक हुआ या नहीं, यह तो खुदा ही जाने।

बहादुरशाह—बाह रे खुदा ! बाह ! री तेरी कुदरत ! क्या-क्या खेल दिखाये तू ने !

एक जमाना था, जब दिल्ली की सल्तनत, हिन्दुस्तान के छोरों को छूती थी। और आज यह हालत है, कि हम लोगों को लालकिला भी इस बजह से छोड़ना पड़ा, कि अगर मेरी बजह से किले पर धावा हुआ, तो—सारा खानदान ही तबाह हो जावेगा।

जीनत—सचमुच, कभी-कभी इन्सान ऐसे चौराहे पर पहुँच जाता है, जहाँ वह यह नहीं सोच पाता, कि क्या करना चाहिए, किधर जाना चाहिए। कल रात, हम लोगों की कुछ ऐसी हालत थी।

बहादुरशाह—ठीक कहती हो बेगम ! मैं भी यह तय नहीं कर पाता था, कि इलाहीवख्श और बख्तखाँ में से किसकी सलाह ठीक है। अभी तक वक्तखाँ के लफज, कानों में गूँज रहे हैं। उसने कहा था—

"दिल्ली हाथ से निकल जाने पर भी हमारा कुछ अधिक नहीं बिगड़ेगा। तमाम मुल्क में आग लगी हुई है। आप मेरे साथ दिल्ली से निकल चलिए। हमारी लड़ाई जारी रहेगी। आखिर में फतह हमारी होगी।"

जीनत—मगर, मिरजा इलाहीवख्श के कहने में भी सचाई तो दीख रही थी। दिल्ली छोड़कर जाने में क्या फायदा था ? आखिर सारा खानदान तो यहाँ हैं। जीना-मरना, जो हो, साथ-साथ हो। सिपहसालार वख्तखाँ तो, यहाँ अभी आनेवाला है। मिरजा इलाहीबख्श भी आवेंगे। फिर सलाह मुशविरा कर लीजिए। जों ठीक लगे कीजिएगा–अभी तो कुछ बिगड़ा नहीं है।

[वख्तखाँ का प्रवेश]

बहादुरशाह—लो, वह वख्तखाँ तो आ रहा है। बड़ी उम्र है तेरी, बेटा ! अभी-अभी तेरा नाम लिया जा रहा था। बेटा वख्तखाँ ! मेरी समझ में नहीं आ रहा है कि इस मौके पर क्या करना चाहिए ? तुम कुछ कहते हो, इलाहीवख्श कुछ और कहता है। किसकी बात मानूँ ?

वख्तखाँ—जो कुछ मुझे कहना था. जहाँपनाह ! कल रात आपके सामने जाहिर कर दिया—मैं अब भी मानता हूँ, कि एक दिल्ली जाने से हार नहीं मान लेनी चाहिए। जंग तो सारे देश में छिड़ी है। एक मोरचे पर अगर हमें फ़तह नहीं मिली, तो कोई बड़ी बात नहीं। हम दूसरे मोरचे पर लड़ेंगे। मैं तो आपसे अब

भी दरख्वास्त करता हूँ कि आप अब भी इस हुमायूँ मकबरे के पीछे के दरवाजे से निकल चलिए। मेरे घोड़े पालकी जमुना नदी के किनारे तैयार खड़ी हैं। फौज को भी वहीं छोड़ आया हूँ।

जीनत—फौज जमुना के किनारे पर क्यों? क्या लाल किले पर से तुमने अपनी फौज हटा ली? उसकी हिफाजत?

वख्तखाँ—बेगम साहिबा! ईंट-पत्थर की रक्षा करने के लिए हमारी फौजें रुहेलखंड से नहीं आई हैं। अब, जब मैं अपनी बात आपको नहीं समझा पा रहा हूँ, तो लौट जाऊँगा—नहीं तो, जमना नदी तो है ही, उसी में हमारी बची फौज जल-समाधि ले लेगी, मगर मैं हार मँजूर नहीं कर सकता।

[इलाहीबख्श का प्रवेश]

इलाही—अच्छा! वख्तखाँ पहले से ही यहाँ मौजूद हैं। मगर वख्तखाँ! याद रखें, अब तब जहाँपनाह को गुमराह नहीं कर सकते सिर्फ एक तुम्हारी बजह से जहाँपनाह और बेगम साहिबा को यह सब देखना पड़ा है।

हवाई किले बना-बना कर, तुम अब तक जहाँपनाह को ठगते रहे हो... ..।

बहादुरशाह—चुप रहो इलाहीबख्श! अगर तुम्हें बोलना नहीं आता, तो जवान को मुँह में आराम दो। मेरे सामने ही तुम वख्तखाँ की, बहादुर वख्तखाँ की, वफादार वख्तखाँ की तौहीन करते हो.....।

इलाही—गुस्ताखी माफ हो शहनशाह! वख्तखाँ के बारे में मुझे अब कुछ नहीं कहना। मगर आप और आपके खानदान के लिए मैं यह ठीक समझता हूँ, कि आप अपने को इस विद्रोह से अलग रखें। अँगरेज अफसरों से मेरे कुछ सम्बन्ध हैं। मैं सब

बातों की सफाई करा दूंगा। इस विद्रोह के सफल होने की अब कोई उम्मीद नहीं रही

बहादुरशाह—शायद तुम ठीक कहते हो। कौन जाने ?

वख्तखाँ—जहाँपनाह, तब क्या मैं समझूँ कि आप अपनी हार मंजूर करने जा रहे हैं ?

इलाही—वख्तखाँ ! खबरदार ! जो जवान चलाई। जहाँपनाह ! एक रहस्य, मैं आज और खोलता हूँ। (वख्तखाँ से) वख्तखाँ ! मैं जानता था कि तुम पठान हो। हम लोग मुगल हैं। तुम चालाकी से जहाँपनाह को फाँस कर, अपनी कौम का पुराना बदला चुकाना चाहते हो। अब यह नहीं हो सकता।

वख्तखाँ—(तलवार खींचकर) खबरदार, जो आगे जवान चलाई। झूठा इल्जाम लगाते हुए तुम्हें शर्म नहीं आती ?

बहादुरशाह—यह क्या ? आपस में ही तलवार ?

इलाहीवख्श—(हँसता है) पतंगे की जब मौत नजदीक आती है, तब उसके पर निकल आते हैं।

जीनत—मिरजा साहब ! जवान पर काबू कीजिये। जहर उगलने के लिए ही खुदा ने जवान नहीं दी है। जो बात कहनीं हो, सीधी तरह से भी कही जा सकती है।

बहादुरशाह—"बेटा वख्तखाँ।" (कुछ सोचता है।) "बेटा वख्तखाँ। मुझे तेरी हर बात पर यकीन है ! और तेरी राय को दिल से पसन्द करता हूँ मगर, जिस्म की ताकत ने जवाब दे दिया है। इसलिए मैं अपना मामला तकदीर के हवाले करता हूँ। मुझको मेरे हाल पर छोड़ दो। मैं न सही, मेरे खानदान से न सही, तुम या और कोई शेरब्दा हिन्दुस्तान की लाज रखे। अपने फर्ज को अंजाम देना।

वख्तखाँ—तो जैसी खुदा की मर्जी—अलविदा !

[वस्तखाँ जल्दी से जाता है ।]

इलाहीवक्श—[हरा रुमाल हिलाता है ।]

बहादुरशाह—इलाहीवक्श ! यह हरा रुमाल क्यों हिला रहे हो ? ऐं, उस फाटक से यह कौन आ रहे हैं ? कौन आ रहा है ? अँगरेज अफसर ?

जीनत—हाय खुदा ? यह क्या ? यह क्या ? यह क्या हो रहा है ? ये तो अँगरेज अफसर सिपाहियों के साथ आ रहा है ?

बहादुरशाह—समझा, समझा—

"इस घर को आग लग गई
घर के चिराग से ।"

क्यों मिरजा साहब ? विलायती शराब इसीलिए जबान से लगी थी ? .....समझा. कमांडर-इन-चीफ रीड से इसीलिए मिलना होता था ? क्यों मिरजा साहब ? आप के ये लफ्ज थे न..... "अपने अपने ही होते हैं, और पराये पराये—वक्त पड़ने पर—जो अपने होते हैं, वही मददगार होते हैं । क्यों ठीक है न । मिरजा साहब !"

इलाहीवक्श—[जल्दी जल्दी शराब पीता है ।]

[हड़सन का प्रवेश]

हड़सन—[मेजर हड़सन, चार गोरे सैनिक किरचे चढ़ी हुई बन्दूकें लिये हुये (गोरे सैनिकों से) देखते क्या हो, फौरन गिरफ्तार करो । जल्दी करो, जल्दी करो ।

बहादुरशाह—तो तुम, तुम,—मुझे ? मुझे ?

हड़सन—हाँ, हाँ, हम तुम को गिरफ्तार करेगा ।

[जीनत चिल्ला कर गिर पड़ती है ।]

जीनत—या खुदा, माफ कर ! माफ कर ! ऐसा मैंने क्या गुनाह किया था ?

हड़सन—अब माफी माँगती है ?

बहादुरशाह—हरगिज नहीं। वह तुम से माफी नहीं माँगती। खुदा से माफी माँगती है। तैमूर की औलाद, किसी आदमी से माफी नहीं माँग सकती और किसी फिरंगी से तो हरगिज नहीं। बेगम ! यह कायरता क्यों ? खबरदार ! जो एक भी आँसू आँख से निकाला। हमने बहुत से हीरे और जवाहरात के गहने पहने हैं, आज यह हथकड़ियाँ भी सही। मगर बादशाह का, बेगम का सिर हमेशा ऊँचा रहाहै, हमेशा ऊँचा रहेगा। बादशाह मरते दम तक बादशाह रहेगा।

हड़सन—[हँसता है] अब भी बादशाह ? अच्छा ! अच्छा !

बहादुरशाह—हाँ, हाँ, बहादुरशाह का सिर उतर सकता है, झुक नहीं सकता।

हड़सन—[जोर से चिल्लाता है] मिस्टर रीड।

[मिस्टर रीड का प्रवेश। हड़सन उसके कान में कुछ कहता है, वह लौट जाता है।]

हड़सन—टो,टुम अब भी बादशाह है। अब बादशाह है। अच्छा टो आपका टख्ट कहाँ है ?

बहादुरशाह—आज हमारा तख्त यह जमीन है, जिसे कोई छीन नहीं सकता।

हड़सन—आज टुम्हारा टख्त यह जमीन है, जिसे कोई छीन नहीं सकटा। अच्छा टुम्हारी सल्टनट किस पर है ?

बहादुरशाह—मेरी सल्तनत ? मेरी सल्तनत उन करोड़ों लोगों के दिलों पर है, जो इस जंगे-आजादी में लगे हुए हैं।

हड़सन—टुम्हारी सल्टमेंनट उन करोड़ों लोगों के दिलों पर है, जो इस जंग में लगे हुए हैं।

[जोर से---मि. रीड़.....जल्दी करो]

[रीड के साथ तीन गोरे सैनिक आगे आये जिनके हाथों में कपड़ से ढके तीन थाल हैं।]

हड़सन—अच्छा, हम भी टो टुम्हारी रियाया हैं। हम लोग आपको कुछ नजर करना चाहटा है । बरसों से आपकी नजर बन्द कर दी गई। आओ। मैं खुद बा अदब नजरें पेश करेगा

[हँसता हुआ झुक कर सलाम करता है।]

[परदा गिरता है]

□

छठा दृश्य

[स्थान-कलकत्ता। फोर्ट विलियम का एक कमरा। रात्रि का समय]

बहादुरशाह—क्या जग गई, बेगम ?

जीनत—मैं सोई कब थी जो जगूँगी।

बहादुरशाह—तो तुम भी जागती ही रही ?

जीनत—यह रात भी कोई सोने की रात है।

बहादुरशाह—ठीक कहती हो बेगम! यह रात तो बड़ा महत्व रखती है। वतन की आखिरी रात !

जीनत—सुनते हैं कल जहाज में बिठाकर हमें कही ले जाया जायेगा किसी दूर देश में, जहाँ अपना कोई नहीं होगा। रात भर मैं यही सोचती रही, परेशान होती रही।

बहादुरशाह—बेगम ! मैं तो यादों की बरात ही देखता रहा। क्या कहें एक के बाद एक, क्या-क्या यादें सामने से गुजरती रहीं। एक दिन था, जब सेहरा बाँधे घोड़े पर सवार मैं आगे आगे था और तुम नव वधू बनी पालकी में बैठी थीं। किस धूमधाम के साथ लाखों की भीड़ से होते हुये लाल किले में पहुँचे थे।

[बेगम की हिचकियाँ सुनाई देती हैं]

यह क्या बेगम ? तुम रोने लगी ? बीती बातों को आँसुओं से नहीं भिगोना चाहिये।

जीनत—ये यादें तो यों ही दिल में सुलग रही हैं और आप उन्हें फूंक मार-मार कर भड़का रहे है। 'रोने के सिवा और कर ही क्या सकती हूँ।

बहादुरशाह—और एक दिन यह देखने के
रात के परदे की आड़ में, हमें, तुम्हें और खा
लोगों को पालकियों में बिठा कर चुपके-चुपके
पहुँचा दिया गया। लाल किले से, दिल्ली से वह
सदा के लिये बिदाई थी।

जीनत—आप लाल किले से, दिल्ली से कि
रहे हैं आज से अपने प्यारे वतन से ही, हिन्दुस्
की बात होने वाली है। कल की रात न जा
कोने में होगी।

बहादुरशाह—बेगम! तुम आगे की बातें
पीछे की यादें ही नहीं छोड़ती। इन फिरंगि
कैसा मज़ाक उड़ाया था। लाल किले में हम प
नाटक रचा गया, हम पर कितने जुर्म लगा
साबित भी कर दिया गया, क्योंकि वे हमें देश
थे। मेरी बात भी नहीं सुनी गई। जिन लो
अर्थ होता है-ठीक और तुम का मतलब होत
न्याय की आशा भी कैसे की जा सकती है?

जीनत—फिर वहीं बातें? उन पर रं
सोचना तो आज की बात पर है, अब की ब

बहादुरशाह—सोचने का कुछ मतलब त
है जो कुछ कर सके। आज तुम्हारा खाविन्द
नहीं फिरंगियों का कैदी है कैदी। कैदी को
है जो उसे कैदी बनाने वाले सोचते हैं। कल
था कि रात के चार बजे हमें यहाँ से ले जा
वक्त होगा?

जीनत—मालूम नहीं क्या वक्त होगा। शायद तीन बजे होगें।

बहादुरशाह—अरे बेगम ! एक काम करना है। मैं तो भूले ही जा रहा था। तुम्हारे पास चाकू है ?

जीनत—चाकू ? चाकू का क्या करोगे ?

बहादुरशाह—है या नहीं—यह बताओ। क्या करूँगा-यह मैं जानता हूँ।

जीनत—चाकू तो नहीं है।

बहादुरशाह—चाकू नहीं है। और कोई लोहे की चीज ? सरौता तो होगा !

जीनत—पानदान जवानी बेगम के पास है।

बहादुरशाह—सरौता भी नहीं। अरे हाँ, याद आया। वह कलम होगी जिसमें ऊपर की ओर एक छोटा चाकू लगा है। वही क़लम लाओ।

जीनत—उस लोहे वाली कलम से आखिर आप क्या करेंगे ?

बहादुरशाह—कलम से और क्या किया जाता है, शेरें लिखी जाती हैं !

जीनत—तो आप शेरें लिखेंगे इस अंधेरे में ? शेरो-शायरी के दीवाने मेरे मालिक ! मैं तो चकित हूँ आपके इस शौक पर !

बहादुरशाह—अच्छा अच्छा ! बेगम ! तुम चकित होती हो मेरे इस शौक पर ! हिन्दुस्तान पर से तो मेरी हुकूमत गई, शेरों पर भी मैं हुकूमत न करूँ—यह न होगा, हरगिज न होगा। खैर बेगम ! तुम जल्दी से वह कलम ले आओ। वक्त कम होता जाता है। और हाँ, एक रूमाल भी लेती आना।

[जीनत कलम-रूमाल लेने जाती है। बहादुरशाह घूम घूम कर शेर गुनगुनाते हैं]

देख मुझको बुते बेपीन ने मुंह फेर लिया ।
आज मुझसे मेरी तकदीर ने मुंह फेर लिया ।।
अक्ल ने, होश ने, तकदीर ने मुंह फेर लिया ।
बस मेरी आह से तासीर ने मुंह फेर लिया ।।

[जीनत कलम और रूमाल लाकर देती है और चली जाती है
बहादुरशाह कुछ दूर जा कर कलम की नोक से
मिट्टी खोदने लगते हैं और मिट्टी को रूमाल में रखते जाते हैं

[अँग्रेज संत्तरी का प्रवेश]

सन्तरी—हूँ इज देअर ? वहाँ कौन है ?

बहादुरशाह—[मौन]

सन्तरी—हम पूछटा है वहाँ कौन है ?

बहादुरशाह—जफर

सन्तरी—जफर ? क्या जफर ? जफर कौन ? यह जफर कह से आ गया ?

[पास पहुँचकर]

सन्तरी—हूँ ! तुम बहादुरशाह है और हमको अपना ना जफर बताता है !

बहादुरशाह—हाँ मैं जफर हूँ जफर ! बहादुर शाह नहीं !

सन्तरी—क्या मतलब ? तुम बहादुरशाह नहीं, जफर है । क्य तुम पागल हो गया है ? अपना नाम जफर बतलाता है । खैर तुम्हारे हाथ में यह क्या है और तुम यहाँ कर रहा है ?

बहादुरशाह—मेरे हाथ में कलम है और मैं शेर लिख रहा हूँ

सन्तरी—कहाँ लिख रहा है ? जमीन पर ?

बहादुरशाह—हाँ जमीन पर ।

सन्तरी—वह कलम मुझे दो ।

बहादुरशाह—हरगिज नहीं ! कलम नहीं दे सकता। यह हिन्दुस्तानी की कलम है।

सन्तरी—इधर दो कलम ! अब भी हिन्दुस्तान की ऐंठ ?

बहादुरशाह—वह तो सदा रहेगी। मैं कलम हरगिज नहीं दे सकता। फिरंगियों ने हमारी, हमारे हिन्दुतान की शमशीर छीन ली है। उन्हें इसी का गर्व है। मगर हमें कोई चिन्ता नहीं कलम में वह ताकत होती है कि वह अपनी नोक से हजारों नही लाखों शमशीरें पैदा कर सकती है। तुम क्या जानो कलम की ताकत ? इसे तो हम शायर जानते हैं जफर जानता है।

सन्तरी—अच्छा वड़ बड़ बन्द करो। सीडी तरह कलम मेरे हवाले करो।

बहादुर—हरगिज नहीं। बहादुरशाह अपनी जान दे सकता है, जफर अपनी कलम नहीं दे सकता।

सन्तरी—तो मैं छीन लूंगा

[आगे बढ़ कर छीनने की कोशिश करता है।
इतने में जवांवख्त का प्रवेश]

जवाँवख्त—[झपट कर] यह क्या कर रहा है। पीछे हटो, नहीं तो खैर नहीं। क्या समझ रखा है तुमने ? पीछे हटो। जाओ यहाँ से।

सन्तरी—क्यों हटूं, क्यों जाऊं ? मैं सन्तरी हूँ।

जवाँवख्त—अवे सन्तरी के बच्चे ! पीछे हट। सन्तरी है तो तू अपना काम कर। मेरे अब्बाजान से ऐसा व्यवहार नही कर सकता। हट पीछे हट। जा यहाँ से।

सन्तरी—अच्छा अच्छा ! हम टुम को देख लेगा।

[जाता है]

जवाँवख्त—जा जा ! बड़ा चला है देखने वाला।

[बहादुरशाह से]

आप यहाँ क्या कर रहे है ? आराम करें।

बहादुरशाह—[हँसता है] आराम करें ! आराम अब कहाँ ? उसे तो दिल्ली ही छोड़ आया । अच्छा ! जवाँवख्त-जरा बहू को तो बुला । इधर भेज दे ।

[जवाँवख्त जाकर जमानी बेगम को भेजता है
जमानी बेगम का प्रवेश]

जमानी बेगम—अब्बाजान ! आपने मुझे बुलाया ?

बहादुरशाह—हां बेटी ! मैने बुलाया था । देख—

[रूमाल में बँधी एक छोटी पोटली देता है]

इस छोटी-सी पोटली को अपने पास सम्हाल कर रख ले । यह अपने साथ चलेगी । चाहे और कुछ सामान छूट जाय, मगर यह न छूटनी चाहिये ।

जमानी बेगम—इसमें क्या है, अब्बाजान ?

बहादुरशाह—मिट्टी

जमानी बेगम—मिट्टी !

बहादुरशाह—हाँ हाँ मिट्टी ! मादरे वतन की मिट्टी । फिर यह कहाँ मिलेगी ?

जमानी बेगम—इसका क्या करेंगे ?

बहादुरशाह—क्या करें गे ? तू नहीं जानती इस मिट्टी का मेरे लिये कितना महत्व है । यह हिन्दुस्तान की मिट्टी है, मादरे वतन की मिट्टी है । हम वतन से दूर जा रहे हैं । यह हमारे साथ रहेगी । हम इसकी रोज सिजदा करेंगे । जब तक जिन्दा रहेंगे, इसकी पूजा करेंगे। और जब मेरी कज़ा आये, मैं चाहूँगा कि मेरी लाश के साथ यह मिट्टी, मादरे वतन की मिट्टी कब्र में रख दी जाय ताकि मेरी रूह को तसल्ली मिलें, शान्ति मिले । तू इसे सम्हाल कर रखना ।

जमानी बेगम—जैसा हुक्म

बहादुरशाह—और हाँ ! देख ! सब सामान तो ठीक कर ही लिया होगा । तेरा सबसे बड़ा काम यह होगा कि तू अपनी सास को, अम्माजान को सम्हालना । बेगम की हालत अच्छी नहीं है । वह जरूरत से ज्यादाह परेशान हो जाती है । उसको तसल्ली देती रहना । खुदा की जैसी मर्जी होगी, वैसा होगा । हमने अच्छे दिन देखे हैं, अब जब तकदीर में बुरे दिन बदे हैं, उन्हें भी देखेंगे । लेकिन हम अपना दिल न छोटा करेंगे और न हम अपने मुल्क की शान पर आँच आने देगें । अच्छा जाओ, बेगम को सम्हालो ।

[जमानी बेगम जाती है । बहादुरशाह घूम घूम कर शेर पढ़ता है]

ठोकरें खाऊँ मगर वतन में रहूँ ।
काँटे चुनता हुआ चमन में रहूँ ।
जिस्म तो मिट्टी है कहीं ले जा तू ।
रूह मेरी तो यहाँ रहने वाली ॥

□

सातवाँ दृश्य

[स्थान-रंगून (वर्मा) सित्यांग नदी के
८५ खाट पर बहादुरशाह बैठे हैं। सामने
निगाली मुंह में है। हुक्का पी रहे हैं।
पास में जीनत बैठी फटा कपड़ा सी रहीं

जीनत—जब खाँसी आती है तो थोड़ी दे
पीना बन्दकर दिया करें।

बहादुरशाह—हुक्का पीना बन्द कर दें कल
लेना बन्द कर दें।

जीनत—कैसी बातें करते हैं आप! हमेशा
निकालते हैं। मैंने तो यह कहा कि खाँसी से आर
पियें।

बहादुरशाह—हुक्का क्या खाक पियें। जर
को तो बुलाओ जाने कहाँ से सड़ी तम्बाखू उठा
कोई पीने लायक तम्बाखू हैं। कम्बख्त जानता
किस्म की तम्बाखू पीता हूँ। बदतमीज कहीं क

जीनत—उसे गाली क्यों दे रहे हैं आप
खिदमत में लगा रहता है। अल्लाह का लाख
अभी तक साथ है और जी जान से खिदमत
देखते नहीं अपने कहलाने वाले कितने लोग
आये थे। सब किनाराकशी कर गये। बफा
बातें करते थे। है कोई उनमें से एक भी साथ
ने अपना घर बसा लिया और मौज कर रहे
और अब्बास ही सहारा बने हुये हैं।

बहादुरशाह—तुम अपना लेक्चर बन्द करोगी-या यह चलता ही रहेगा। अब्बास को तुम्हीं ने सिर चढ़ा रखा है। तभी वह मनमानी करता है। यह तम्बाखू लाया है। कचरा उठा लाया है कचरा!

जीनत—तो जरा ठहरो! मैं बुलाती हूँ अब्बास को। [जोर से] अब्बास! ए अब्बास! जरा इधर तो आना।

[दूर से आवाज आती है—'आया'। अब्बास का प्रवेश]

बहादुरशाह—क्या साहबजादे! यह सड़ी तम्बाखू कहाँ से उठा लाये?

अब्बास—अब्बाजान! दूसरी दूकान से लाना पड़ा।

बहादुरशाह—लाना पड़ा! यानी तुम नहीं लाये।

अब्बास—नहीं अब्बाजान। बात यह हुई कि जिस दूकान से सामान आता था, उसने सामान देना बन्द कर दिया। उसने कहा-अब सामान उधार नहीं दिया जायेगा। पहले पिछला पैसा अदा कर जाओ, तब सामान मिलेगा। मेरे पास थोड़े ही पैसे बचे थे, उनसे एक दूसरी दुकान से तमबाखू ले आया।

बहादुरशाह—हूँ [सोचने लगता है] तो बात यहाँ तक पहुँच गई है। सामान उधार आने लगा है। कितनी उधारी है? क्यों बेगम। यह उधारी कब से चालू हुई? क्यों हुई।

जीनत—मेरे मालिक। आप को क्या मालूम! जो पैसा साथ लाये थे वह तो कभी का खत्म हो गया। मैं अब तक आपके सात कीमती जेवर बेच चुकी हूँ उससे जो पैसा मिला उसी से किसी तरह गुजारा कर रही हूँ।

बहादुरशाह—तुमने कभी मुझे यह नहीं बताया।

जीनत—बताने से लाभ? जिन्दगी तो बसर करनी है। खर्च ही रहता है, आमदनी का तो कोई जरिया नहीं।

बहादुरशाह—हूँ ! [अब्बास से] क्यों अब्बास ? उस मोदी को कितना देना है ?

अब्बास—यही कोई डेढ़ सौ रुपये बता रहा था ।

जीनत—बेटा अब्बास ! तू यह कर । मेरी यह जंजीर ले जा सुनार के यहाँ बेंच आ । उधर से ही मोदी के पैसे चुकाते आना और उसी के दूकान से तम्बाखू लेते आना । अच्छा ठहर, मैं यह काम जवांवख्त को सौंपती हूँ । तू जरा जवांवख्त को बुला तो दे ।

[अब्बास जाता है, जवांवख्त का प्रवेश]

जवांवख्त—क्या है अम्माजान !

जीनत—बेटा, ले एक काम कर आ । यह जंजीर ले जा सुनार के यहाँ बेच आ । जो दाम मिले उसमें से मोदी की उधारी चुका देना । उसने आज सामान देना बन्द कर दिया है ।

जवांवख्त—बन्द नहीं करेगा, तो और क्या करेगा ? और फिर ये गहने कब तक काम चला सकेंगे ! अब तक आप के सात गहने यों मैं ही बेच आया हूँ ।

बहादुरशाह—तो तुम्हारा कहना क्या है ?

जवांवख्त—मेरा कहना क्या है ! कोई मेरी बात सुनता है ?

बहादुरशाह—कुछ कहे भी ! तू कहना क्या चाहता है ?

जवांवख्त—क्या कहूँ ? पेन्शन की बात कहते ही आप लाल-पीले होने लगते हैं । तब क्या कहूँ ?

बहादुरशाह—हूँ ! तो साहबजादे का कहना है कि मैं पेन्शन लेना मंजूर कर लूँ । क्यों यही न ? यह पेन्शन लूँ उन कम्बख्त अंग्रेजों से जिन्होंने ताज-तख्त छीना, सल्तनत छीनी, हम सबको कैदी बनाया, और तो और हमसे हमारा वतन भी छीन लिया और हमें यहाँ परदेश में डाल दिया, ऊपर से अंग्रेज सन्तरियों का पहरा ! उनसे पेन्शन माँगे, पेन्शन के लिये गिड़गिड़ायें क्यों ?

तुम यही चाहते हो ? बहादुरशाह यह कभी नहीं करेगा, कभी नहीं करेगा। कम्बख्तों की पेन्शम खा-खा कर क्या हम सदा जिन्दा बने रहेंगे ? एक दिन मरना है ही। हम अपनी आन क्यों छोड़े ? अपनी शान क्यों छोड़ें ?

मगर बेटे ! मुझे अफसोस इस बात का है कि मेरा बेटा होकर तू ऐसी बाते करता है ! पेन्शन लेने की सोचता है। शरम आनी चाहिये। जानता है तू किस खानदान की औलाद है।

[भीतर से 'अब्बास' की आवाज आती है। अब्बास भीतर जाता है और फिर लौट कर आता है]

अब्बास—बड़े भाई ! आप को बेगम बुला रही हैं।

[जवाँवस्त अन्दर जाता है]

जीनत—बेटा अब्बास ! तू ही यह जंजीर ले जा। मोंदी के पिछले पैसे चुका देना और तम्बाखू लेते आना। जल्दी लौटना !

[अब्बास जाता है। नेलसन का प्रवेश]

नेलसन—आदाबर्ज शाह साहब ! कैसी तबीयत है ?

बहादुरशाह—आइये आइये नेलसन साहब ? अब तो आप हिन्दी बोलने लगे।

नेलसन—नहीं नहीं। हाँ कोशिश कर रहा हूँ। आप के पड़ोस में रहता हूँ, कुछ तो सीखना ही चाहिए।

बहादुरशाह—कोशीश नहीं, कोशिश, उसी तरह 'तबीयत, नहीं तबियत !

नेलसन—कोशीश कोशिश, तबियत तबियत ! शाह साहब ! जल्दी सीख लूंगा। हिन्दी सीखना कठिन नहीं है।

[जीनत से] बेगम साहिबा ! आप ठीक हैं। न ?

जीनत—अब क्या ठीक होंगे। जी रहे हैं क्योंकि मौत नहीं आती वरना यह भी कोई जिन्दगी है ?

नेलसन—आप लोगों का इस तरह तकलीफ उठाना मुझे अच्छा नहीं लगता ! आप को मेरी बात मान लेनी चाहिये !

बहादुरशाह—क्या बात मान लेनी चाहिये-वही पेन्शन वाली? हरगिज़ नहीं ! आप और सारी बातें कीजिये मगर पेन्शन की बात मत उठाइये ! मैं हरगिज कबूल नहीं कर सकता ! मगर एक बात बताइये-अँग्रेज होकर भी आप इतने मेहरवान क्यों हैं !

जीनत—इन्से भी अधिक मेहरवान तो इनकी मेम साहिबा हैं कल कितने सारे सेव दे गई। काश सब अँग्रेज आप जैसे होते।

नेलसन—थेंक्स ! मगर मानना है कि इन्डयूविडुअल..... इन्ड्यूविडुअल को क्या कहेंगे—एक एक शख्स अच्छा या बुरा हो सकटा है, उस पर से पूरी जाति को अच्छा या बुरा कहना ठीक नहीं। हिन्दू होने से, मुसलमान होने से अंग्रेज होने से कोई अच्छा या बुरा होटा है ऐसा मैं नहीं मानटा।

बहादुरशाह—आपका कहना ठीक हो सकता है मगर फिरंगियों ने हमारे हिन्दुस्तान में इतने जुल्म ढाये हैं इतने अत्याचार किये हैं कि उनसे अँग्रेज जाति बदनाम हो गई है। आज भी हमारे ऊपर अँग्रेज सन्तरियों का पहरा है जैसे हम कोई डाकू हैं। डाकू तो खुद हैं जिन्होंने हिन्दुस्तान को, हमारे मादरे वतन को जी भर कर लूटा है।

नेलसन—अच्छा शाह साहब। छोड़िये इन बाटों को। क्या इधर आपने कुछ शेर लिखे हैं। आप के शेर मुझे बहुट पसन्द आटे हैं।

[अँधेरा होने लगता है। इसलिये अब्बास आकर चिराग रोशन कर जाता है [

बहादुरशाह—शेर और शायरी के सहारे ही तो जी रहा हूँ। देखो नेलसन साहब! खुदा कितना रहीम है, करीम है। आप देखते हैं। मुझे लकवा मार गया है। लेकिन उससे मेरे जिस्म का बाँया हिस्सा नाकामयाब हो गया है अगर कहीं दाहिना हिस्सा नाकामयाब हो जाता तो मैं शेर कैसे लिख पाता। है न खुदा कितना रहीम दिल! हाँ तो आप शेर सुनना चाहते हैं।

नेलसन—जरूर सुनाइये।

बहादुरशाह—रंगून आने से पहले कलकत्ते में मैंने कुछ शेर लिखे थे।

जलाया यार ने ऐसा कि हम वतन से चले
बतौर शमअ के रोते हुये अंजुमन से चले।
इजाजत मिल गई थी सैर करने की
खुशी से आये थे रोते हुये चमन से चले।

नेलसन—आप के शेर बड़े ही दर्द भरे होते हैं।

बहादुरशाह—मेरे दिल मत रो, यहाँ आँसू बहाना है मना।
इस कफस के कैदियों को आबोदाना है मना।
हाय कमबख्ती तो देखो कह दिया सैयाद ने।
इस चमन में बुलबुलों का चह चहाना है मना।

नेलसन—शाह साहेब! आप के शेर तो रुला देते हैं। अच्छा अब इजाजट दें। चलता हूँ।

बहादुरशाह—खुदा हाफिज! आ जाया कीजिये आपके आने से दिल बहल जता है।

[नेलसन जाते है]

[बेगम से] बेगम थोड़ी देर से मैं किसी की दबी-दबी

हिचकियाँ सुन रहा हूँ। कौन रो रहा है।

जीनत—जाकर देखती हूँ।

[आती है। सांई सवील का प्रवेश]

सांई सवील—हिन्दुस्तान से आया मैं सांई सवील आप की खिदमत में अपना सलाम पेश करता हूँ ! [झुक झुक कर सलाम करता है]

बहादुरशाह—तुम हिन्दुस्तान से आये हो मादरे वतन से आये हो इधर मेरे नजदीक आकर बैठो ! मैंने तुम्हें पहिचाना नहीं !

सांई सवील—हुजूर ! दिल्ली में तो मैंने आप को बहुत दूर से देखा था ! वहाँ इए नाचीज की क्या हिम्मत जो आप के पास पहुँचता ! जमानी बेगम की अम्माजान का खत लेकर आया हूँ ?

बहादुरशाह—कहाँ है वह खत ?

सांई सवील—जमानी बेगम को दे दिया गया ! तभी से बेचारी रो रही है !

बहादुरशाह—अच्छा तो बहू जमानी बेगम की ही ये दबी दबी हिचकियाँ थीं ! हूँ। मै समझ सकता हूँ, उसकी माँ ने क्या-क्या लिखा होगा। वह सब पढ़कर बहू का दुखी होना स्वाभाविक है मगर साई सवील ! आप की आँखे भोगी क्यों है।

सांई सवील—[आँसू पोछता हुआ] कुछ नहीं हुजूर

बहादुरशाह—कुछ क्यों नही—क्या बात है ?

सांई सवील—[फकक फकक कर रो पड़ता है] आप सब को ऐसी दयनीय हालत में देख कर आँसू रुकते ही नहीं हैं ? कहाँ दिल्ली की वह शान-शौकत, वह सुख सुविधा, वह वैभव-विलास और कहाँ इस रंगून में ऐसे तंग कमरे—ये तकलीफें—

[रोता है [

बहादुरशाह—[अपने आँसू पोछते हुये] साई सवील ! रोना-ोना बेमानी है। हम सब लोग अच्छे दिन देख चुके हैं। अब बुरे न देख रहे हैं। खुदा की मर्जी।

साई सवील—हुजूर गुस्ताखी माफ हो। एक बात पूछूँ ?

बहादुरशाह—पूँछ सकते हो।

साई सवील—इन तंग कमरों में इतनी तकलीफें उठा रहे हैं। ापने अधिकारियों से शिकायत क्यों नहीं की ?

बहादुरशाह—जो गुनाह मैने किया उसकी सजा मुझे ही भुग-नी चाहिये। यह सजा अगर कुछ और कड़ी होती तो भी मैं उसे हन करता।

साई सवील—लेकिन आप ने ऐसा कौन-सा गुनाह किया है ?

बहादुरशाह—गुनाह को मैं समझता हूँ। बादशाह होने के ाते मैं देशका पहरेदार था लेकिन पहरेदार होकर भी मैं बहुत नों तक गफलत की गहरी नींद में सोता रहा। समय रहते मैं ागा नहीं और न सही वक्त पर दुश्मन को ललकारा। इससे ड़ा गुनाह और क्या हो सकता था।

[जवांवख्त दौड़ता हुआ आता है [

जवांवख्त—अब्बाजान, अब्बाजान ! बड़े जोर की आँधी आई ।

[दरवाजे और खिड़कियों के कवाड़ भड़-भड़ करने लगते है। किवाड़ों के शीशे फूटते हैं]

[जीनत का प्रवेश]

जीनत—यह क्या हो रहा है। ऐसी तो आँधी कभी नहीं देखी। खुदा हाफिज

[जमानी बेगम का प्रवेश]

जमानी बेगम—अब्बाजान, अब्बाजान। अहाते के दोनों पुराने दरख्त उखड़ कर गिर गये।

[अब्बास का प्रवेश]

अब्बास—बड़े भाई। सड़क के उसपार के झोंपड़े गिर गये।

साई सवील—या खुदा-यह तो तूफान ही है। कैसा अँधेरा घिरता आता है। तेज हवा, वारिश भी!

बहादुरशाह—देखो, चिराग को सम्हालो, सम्हालो कहीं बुझ न जाय। ओह बड़ा खौफनाक तूफान है। अँधेरा घिरता चला आ रहा है। जवांवख्त-चिराग को सम्हालो चिराग को सम्हालो।

[साई सवील भी चिराग को बुझने से बचाना
चाहता है।]

ठहरो, ठहरो, मैं चिराग को सम्हालता हूँ।

[बहादुरशाह उठते हैं। भयानक आवाज होती है।
चिराग गुल हो जाता है। अन्धकार छा

जाता है। बहादुरशाह की थर्राती
हुई आवाज मात्र सुनाई देती है।]

आज चिराग बुझ गया।
कभी फिर जलेगा, फिर जलेगा।

□

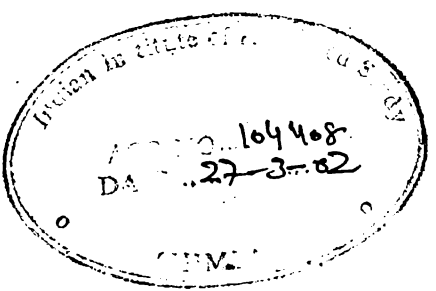
104408
27-3-82

Library IIAS, Shimla
H 812.8 D 851
00104408